पृथ्वीराज-रासो का एक महत्त्वपूर्ण खण्ड

# पद्मावती समय

## महाकवि चन्दबरदाई कृत

(विस्तृत विवेचन, व्याख्या, सटिप्पण तथा सुसम्पादित संस्करण)

★


लेखक व सम्पादक

**प्रो० राधेश्याम त्रिपाठी 'बन्धु'**

एम० ए०, साहित्यरत्न,

हिन्दी-विभाग, गर्वनमेन्ट कॉलेज, अजमेर


★


भूमिका-लेखक

**डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम'**

एम.ए., पी.एच.डी., डी. लिट्.,

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर


★


**कृष्णा ब्रदर्स**

कचहरी रोड, अजमेर

प्रकाशक—
जयकृष्ण अग्रवाल
कृष्णा ब्रादर्स, अजमेर.

प्रथम संस्करण
१९५६


मूल्य २॥)

मुद्रक :
श्री जगन्नाथ यादव
केशव आर्ट प्रिन्टर्स
हाथी भाटा, अजमेर

परम पूज्य पितृव्य श्री पं० **जगदीशप्रसाद जी त्रिपाठी**

**सम्पादक : गौतम-सखा**

के श्री-चरणों में श्रद्धापूर्वक समर्पित

**—'राधे'**

# —: निवेदन :—

चन्द वरदाई हिन्दी के आदि महाकवि माने जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' काव्य तथा भाषा दोनों ही दृष्टियों से एक युगान्तरकारी रचना है। आधुनिक शोध के आधार पर 'रासो' के चार रूपान्तर उपलब्ध हो चुके हैं जिनमें से वृहत रूपान्तर का प्रकाशन व सम्पादन काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। यद्यपि प्रक्षिप्त अंशों के घटाटोप में 'रासो' का मूल रूप बहुत कुछ लुप्त सा होगया है, तदपि उसके मूल रूप के दर्शन किए जा सकते हैं। 'पद्मावती–समय' का आधार वृहत रूपान्तर ही है।

'पद्मावती–समय' पर अभी तक जो व्याख्याएं देखने को मिली हैं उनमें अनेक पदों के अशुद्ध तथा भ्रामक अर्थ दिए गये हैं। प्रारम्भ में ही 'पद्मसेन कुँवर सुघर, ता घर नारि सुजान;' का 'उसके घर में सुन्दर और चतुर पद्मसेन कुंवर रानी है' अर्थ दिया गया है जो नितान्त अशुद्ध तथा भ्रान्त धारणा का पोषक है। वस्तुत: 'पद्मसेन' रानी नहीं अपितु विजयपाल का पुत्र था। इसी प्रकार अनेक पदों के विकृत अर्थ दिये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन सबका उचित निराकरण कर दिया गया है। साथ ही विवेचन–खण्ड में 'पृथ्वीराज रासो' पर विशद रूप से विचार प्रस्तुत किया गया है। इस विचार-गठन में लेखक का मौलिक दावा नहीं है, फिर भी विशेष स्थलों पर अनायास ही मेरा स्वतन्त्र मत प्रतिपादित होगया है। अधिकांशतया मैंने अपना प्रयास इसी में रक्खा है कि 'रासो' की यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को एक स्थान पर संकलित करदी जाय, जिससे विद्यार्थियों एवं 'रासो' के प्रेमी पाठकों को समझने बूझने में सुविधा हो। इस दृष्टि से मेरा प्रयास कहाँ तक सफल हुआ है यह तो पाठक वृन्द ही निर्धारित करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक रचना को सफल एवं सुरुचिपूर्ण बनाने में श्री प्रो० विष्णु अम्बालाल जोशी, अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर

का महत्वपूर्ण योग-दान मुझे मिला है। श्रद्धेय जोशीजी का मुझ पर सदा से अग्रज तुल्य स्नेहभाव रहा है,साथ ही साहित्य-रचना में आपकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मेरे लिए सदा से मार्ग-दर्शन का कार्य करती रही है, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। आपने इस पुस्तक-रचना में जो महत्व-पूर्ण सुझाव दिये हैं उसके लिए मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

परिशिष्ट-भाग तैयार करने में एम० ए० के मेरे प्रिय सुयोग्य विद्यार्थी श्री नारायणसिंह राठौर ने विशेष परिश्रम किया है तथा पाण्डुलिपि को लिखने में एम० ए० की छात्रा कुमारी सुमित्रा जोशी का श्रम भी सार्थक और प्रशंसनीय है।

मेरे गुरूवर डॉ० मुंशीरामजी शर्मा का मैं विशेष रूप से अनुग्रहीत हूं जिन्होने अपने व्यस्त जीवन में कुछ समय निकाल कर पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है। शिष्य के नाते अपनी श्रद्धांजली मैं श्रीचरणों में अर्पित करता हुआ हृदय से अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

पुस्तक के आवरण पृष्ठ का रेखाचित्र बनाने में मेरे परम मित्र तथा राजस्थान के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा का परिश्रम स्तुत्य है। साथ ही जनमन-प्रकाशन के प्रधान संचालक पं० यज्ञदत्तजी उपाध्याय का भी मैं विशेष रूपसे आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

अंत में उन सब विद्वानों का आभारी हूं जिनकी पुस्तकों तथा विचारों से मैंने लाभ उठाया है। प्रस्तुत पुस्तक से विद्यार्थियों तथा 'रासो' के प्रेमी पाठकों को कुछ भी लाभ प्राप्त हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

गवर्नमेंट कॉलेज, अजमेर।
आश्विन शुक्ला १४, शरद् पूर्णिमा,
गुरूवार, १८ अक्टूबर।

—राधेश्याम त्रिपाठी

# भूमिका

जिसे आज सामन्तवादी साहित्य कहकर तिरस्कृत किया जाता है, क्या वह एकान्त अनुपयोगी साहित्य है? क्या उसका हमारे जीवन के लिए कोई मूल्य नहीं है ? क्या वह विशाल जीवन की अनुभूतियों से शून्य है ? क्या उसने भाव, विचार और कल्पनाओं की अवहेलना की है ? क्या शिल्प की दृष्टि से वह पंगु है ? काव्य यदि जीवनानुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति है, तो उसके इन दोनों अंगों को दृष्टि में रख कर ही हम प्रत्येक युग के काव्य का मूल्यांकन कर सकते हैं।

अनुभूति में अनुभवकर्त्ता, अनुभव तथा अनुभव के विषय तीन आते हैं। वैकारिक तथा प्राकृत, दृष्ट एवं अदृष्ट दोनों प्रकार का जगत अनुभव का विषय है। मेरे सामने सृष्टि का विपुल विस्तार अनुभव करने के लिए पड़ा है। इसके लिये मेरा स्वल्प जीवन पर्याप्त नहीं है। यदि मैं जीवन की शृंखलायें जोड़ता जाऊं, तो भी सम्भव नहीं है, वह मेरी पहुंच की सीमा में आ सके। अतः अपनी असमर्थता का अनुभव करके मैं दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाता हूं। एक युग का साहित्यिक अपने पूर्वयुगीन साहित्यिकों से बहुत कुछ सीखता है। उपयोगितावाद की दृष्टि से यह कार्य आवश्यक और अच्छा है।

जितना साहित्य अबतक लिखा जा सका है, उतना अपने सम्पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं है, पर साहित्य शृंखला के बीच में पड़े हुए कतिपय अमर साहित्यिकों की साधना का उपलब्ध रूप अनेक लुप्त दिशाओं की ओर इंगित कर सकता है और इस माध्यम द्वारा हम अनुपलब्ध साहित्य के स्वरूप का कुछ न कुछ अनुमान लगा सकते हैं। इस उपलब्ध साहित्य की एक विशेष दिशा है। इस दिशा में साधारण जन वर्ग कहीं कहीं आते हैं, विशेषतः वही पुरुष और वही वर्ग लेखनी का विषय बने हैं जिन्होंने कोई विशिष्ट कार्य किया है और उस कार्य का प्रभाव व्यापक रूप से समाज या देश पर पड़ा है।

साहित्य नोन-तेल-अदरक की चिंता में पड़े मानव का चरित्र अंकित नहीं करता। वह महत् चरित्रों का उपासक है। उसकी अर्चना के पात्र वे महाप्राण व्यक्तित्व हैं जिन्होंने अन्न के लिए नहीं; सद्गुण, सदाचार, उदात्त विचार और अवदात भावों को जीवित रखने के लिये जीवन धारण किया था। मानवता इन्हीं को वरेण्य और मूर्धन्य स्थान अबतक देती रही है और साहित्य ने भी मानवता की इसी मान्यता को अपना केन्द्र बिंदु स्थिर किया है।

जो मानव प्रातःकाल उठकर, नित्य कृत्य से निवृत्त होकर जीविका का उपार्जन एवं उसका उपभोग करता हुआ, रात्रि को सो जाता है और इसी सामान्य क्रिया-कलाप में अपना जीवन व्यतीत कर देता है, उसके किस पार्श्व को मैं स्मरण रखूं? मैं ही नहीं, हम मानवों की अधिकांश संख्या इसी कोटि की है। इस प्रकार के जीवन में स्मरणीय अंश क्या है? वह अंश जिसका चिंतन और मनन मानवता का पथ-प्रदर्शन करे, उसका उत्थान करे, उसे प्रकाश की ओर ले चले, क्या मानव की साधारण कोटि में दिखाई देता है? यदि नहीं, तो साहित्य उसे अपनाकर कैसे स्वयं धनी होगा और कैसे अपने पाठकों को कुछ दे सकेगा? कुछ कहने के योग्य हो भी? सम्भवत: पुराकालीन मनीषियों ने इसी हेतु सामान्य नहीं, महत् चरित्रों को साहित्य का विषय स्वीकार किया था। फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हेनरी बर्गसां के शब्दों में नूतनता जीवन का प्रमुख चिन्ह है। साधारण व्यक्ति का जीवन इससे शून्य होता है। चेतना के धनी महामानव ही जीवन में इस नूतनता की प्रतिष्ठा करते हैं। उन्हींकी कृतियां इतिहास का निर्माण करती हैं। जड़वत् जीवन व्यतीत करने वाले साधारण-जन का इसी हेतु इतिहास में कोई स्थान दिखाई नहीं देता। इतिहास और पुराण दोनों ने असाधारण, दैवी चरित्र सम्पन्न, आग्नेय महापुरुषों को ही अपने पृष्ठों में स्थान दिया है।

सामंतवादी साहित्य इन्हीं महत् चरित्रों के यशोगान से परिपूर्ण है। 'पृथ्वीराज-रासो' भी इसी कोटि का साहित्यिक ग्रंथ है। इसमें क्षेपकों की भले ही भरमार हो, भाषा का मूल रूप भी विकृत हो गया हो, ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भ्रान्तियां भी सम्मिलित हो गई हों, पर इतना निश्चित है कि यह अनुपम काव्य ग्रंथ महाकवि चंद वरदायी ने दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के तेजस्वी चरित्र को अमरत्व देने के लिये निर्मित किया था। यह चरित्र कवियों, विक्रमशाली क्षत्रियों, आन पर खेल जाने वाले योद्धाओं और आर्यमर्यादा को अक्षुण्ण रखने वाले वीर बलिदानियों को अब तक अक्षय सम्पत्ति रहा है, यह भी निर्विवाद एवं इतिहास-सिद्ध है।

'पृथ्वीराज-रासो' की प्रामाणिकता के पक्ष एवं विपक्ष म बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उसके काव्योत्कर्ष एवं भाषा सौष्ठव का भी विशद प्रतिपादन मान्य विद्वानों द्वारा किया गया है। उसके कम से कम तीन संस्करण भी विद्वन्मण्डली के समक्ष आ चुके हैं। उसके प्रकाशन में महोपाध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, स्व० आचार्य श्यामसुन्दरदास और कविराज मोहनसिंह के प्रयास स्तुत्य हैं। उसके कुछ अंश एम० ए० कक्षा के हिन्दी विद्यार्थियों के लिए भी बहुत दिनों से पाठ्य-क्रम में सम्मिलित होते रहे हैं। अन्य परीक्षाओं में भी उसे स्थान मिलता रहा है। यह सम्भवतः उसकी प्रसिद्धि एवं कीर्ति के ही कारण है। पंडित प्रवर डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक प्रचलित रासो में से ऐसे अंश एकत्र करके 'रासो-सार' के नाम से प्रकाशित किये हैं जिन्हें चंद वरदायी की मौलिक कृति कहा जा सकता है तथा जिनमें कवि का कवित्व अपने निर्मल रूप में सुरक्षित दिखाई देता है।

'रासो' का 'पद्मावती-समय' कवि की प्राजंल प्रतिभा, कमनीय काव्य-कला, अनूठी उक्तियों तथा सांस्कृतिक सामग्री के कारण विशेष रूप से विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करता रहता है। हर्ष का विषय है कि मेरे सुयोग्य प्रिय शिष्य प्रो० राधेश्याम त्रिपाठी ने 'रासो' के इस अंश को

सुन्दर व्याख्या के साथ अबतक की उपलब्ध समस्त आलोचना-सामग्री का उपयोग करते हुए अपने तर्क सम्मत निर्णय 'विवेचन-खण्ड' में प्रस्तुत किये हैं। प्रारम्भ में वोर-काव्य की परम्परा का निदर्शन करते हुए रासो-काव्य के महत्व को सूचित किया गया है। 'रासो का रचना काल' तथा 'रासो की भाषा' पर श्री त्रिपाठी ने विद्वानों की मान्यताओं को दृष्टि में रखते हुए अपना स्वतंत्र मत प्रतिपादित किया है। 'रासो' के काव्य-सौष्ठव पर भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से अपने स्वस्थ विचार प्रस्तुत किये हैं। ऐतिहासिक विवादों के खंडन-मंडन में लेखक का अपना दृष्टिकोण प्रंशसनीय हैं। विवेचन-खंड का इस दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व है कि इसमें श्री त्रिपाठी ने 'पद्मावती-समय' पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया है, जिससे 'समय' का एक विशिष्ट रूप पाठकों के सामने उभर आता है साथ ही भारतीय कथानक-रूढ़ियों के आधार पर 'पद्मावती-समय' को महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। परिशिष्ट-भाग के विचारणीय विषयों पर जैसा मननपूर्ण विश्लेषण होना चाहिए वैसा अबतक हुआ नहीं है और इसलिए यह अंश अवश्य विद्वानों के ध्यान को आकृष्ट करेगा व प्रेरक सिद्ध होगा—ऐसा मेरा विश्वास है। श्री त्रिपाठी का यह प्रयास 'पृथ्वी-राज रासो' के प्रेमी पाठकों के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध होगा।

अतएव प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों के लिए तो विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी ही, साथ ही 'रासो' के अध्येता भी इससे लाभान्वित होंगे और 'वादे वादे जायते तत्व बोध' की सूक्ति के निकट पहुंचा सकेगी, इस मंगल कामना के साथ यह ग्रन्थ में 'रासो' के प्रेमी पाठकों के कर-कमलों में प्रस्तुत करता हूं। माता सरस्वती हम सबको प्रकाश की ओर ले चले।

आर्य नगर, कानपुर
२८ दिसम्बर '५६'

—मुंशीराम शर्मा
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट,
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, डी. ए. वी कॉलेज, कानपुर।

# * विषय-सूची *

## प्रथम-खंड

विवेचन

# द्वितीय-खंड

पद्मावती समय की टीका

शब्दार्थ, व्याख्या, विशेष, तथा पदों पर तुलनात्मक टिप्पणियाँ।

परिशिष्ट—

१. डिंगल का व्याकरण

२. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा की प्रमुख विशेषतायें

३. समय संबंधी आलोचनात्मक प्रश्न

## प्रथम-खण्ड

# विवेचन

## वीर-काव्य की परम्परा——

वीर-काव्य से हमारा तात्पर्य किसी जन-नायक के निर्लिप्त, निर्भय व मुक्त शौर्य-लीला तथा उसमें प्रयुक्त रण-कौशल के वैभव की गाढ़ अनुभूति की विशिष्ठ अभिव्यक्ति से है, जिसके द्वारा उस नर-पुंगव का यशोगान, जय-पराजय की यथार्थ स्थिति के बावजूद भी, मानव-मन को उदात्त भावों से उद्‌बोधित करता रहता है। वीर-काव्य वीरात्माओं के दर्शन-आंकलन का वह ज्योति-स्तम्भ है जिसके आलोक में हम उस महापुरुष के जीवन की विविध ओजमय छबियों का आभास पाते हैं। त्याग और बलिदान की स्वर्णिम रेखाओं से रंजित उनका जीवन युग-विभूति को अपनाये हुए वसुन्धरा के कण-कण में लहर उठता है। वसुन्धरा ऐसे वीरों को पाकर अपने गौरव की गरिमा में मुस्कराती उनको अमरत्व का वरदान देकर कृतकृत्य होती है। वीर-काव्यों में उनकी कीर्ति-पताकायें 'छन्दों' के वाहन पर भावाकाश में युग-युगान्त तक लहराती रहती है।

यह कहा जा सकता है कि संसार के प्रायः सभी साहित्यों का प्रारम्भिक रूप वीर-काव्य ही रहा है। मानव-हृदय मनुष्य के ओजस्वी गुणों पर आकर्षित होता है, शौर्य और सौन्दर्य मानव-मन पर शीघ्रता से प्रभाव जमा लेते हैं। मानव के ये गुण कल्पना की रंगिनियों के साथ और भी उभर कर काव्य का विषय बन जाते हैं। सौन्दर्य का प्रभाव रतिपरक होता है, पर उसका विकास शनैः २ अपनी ज्योति में अनुराग की विविध कमनीय कान्ति को लेकर उभरता है जबकि शौर्य का प्रभाव तत्काल ही उत्साह के,

उमड़ते हुए प्रवाह को लेकर मानस में 'ज्वार' की स्थिति का बोधक बन जाता है। इसी प्रभावोत्पादिनी प्रेरक शक्ति के कारण वीर-काव्यों का उदय किसी भी साहित्य के शैशव काल में अवश्य हुआ होगा यह सम्भव है। वीर-पूजा की भावना का आरंभ भी हम इसी के साथ मान सकते हैं।

हिन्दी-साहित्य का शैशव भी वीर-काव्यों की क्रीड़ा-भूमि पर व्यतीत हुआ है। पर साहित्य के इस शिशु की अपनी किलकारियों में जिस गर्जन-तर्जन की गंभीर ध्वनि का हम संकेत पाते हैं, लगता है उसकी पृष्ठभूमि में वीर जननी का अपने युग की विषम परिस्थितियों की विभिषिका में फूट पड़ने वाला मुक्त अट्टहास हो।

वेद भारतीय साहित्य की आत्मा है जिससे संस्कृत की अजस्र धारा प्रवाहित हुई। संस्कृत-साहित्य ने भारतीय जन मानस को क्षीर-सागर के सच्चिदानन्द ( सत्-चित्-आनन्द ) में अवगाहन कराया। वीर-काव्य की रचना में युद्ध संबंधी चर्चाओं का बाहुल्य होता है और उसका प्रधान रस वीर-रस ही रहता है। साहित्य दर्पणकार ने 'उत्तम-प्रकृति-वीर' कह कर वीर रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। युद्ध में वीर-रस का स्थायी भाव उत्साह, मूल वृत्ति होती है। ऋग्वेद में युद्ध संबंधी ऋचाओं के उल्लेख मिलते हैं। दिवोदास द्वारा संबर की पराजय तथा सुदास की विजय का वर्णन सूक्तियों द्वारा चित्रित है। अन्य सूक्तों में भी युद्ध विषयक पद यत्र-तत्र बिखरे हुए मिल जाते हैं। परन्तु युद्ध विषयक पदों में आई हुई जय-पराजय की कहानी को हम वीर-काव्य की संज्ञा नहीं दे सकते। इतना अवश्य है कि वेद भी वीरों की जीवन-घटनाओं को अपने में सजाए हुए हैं। शतपथ-ब्राह्मण ग्रन्थ में वीरता संबंधी स्तवन का सूत्र प्राप्त होता है। अश्वमेध-यज्ञ के प्रकरण में एक स्थान पर

इस बात का उल्लेख मिलता है कि "ब्राह्मण दिन में राजाओं का स्तवन करता है और राजन्य रात्रि में। उनका प्रमुख कार्य वीणा-वादन और गायन है। ब्राह्मण केवल यशकर्ता यजमान के दान-धर्म आदि की प्रशंसा में स्वस्ति वाचन करता है परन्तु राजन्य उसकी वीरता तथा युद्ध कौशल आदि का वर्णन करते हुए उसके विजयों का वर्णन प्रचुर मात्रा में करता है।"×

लगता है शतपथ–ब्राह्मण का यही राजन्य कालान्तर में अपने आश्रय-दाता राजा-महाराजाओं की प्रशस्तियां गाने वाला चारण, भाट और ढ़ाढी आदि के रूप में परिवर्तित होगया। उसका मुख्य कार्य अपने राजा के शौर्य पराक्रम का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण कर, उनको प्रसन्न करके, भेंट व उपहार पाना और उनकी कीर्ति के साथ अपनी कीर्ति को भी अमर बनाना रहा होगा।

महाभारत में सूत और मागधों द्वारा राजाओं की प्रशंसा का उल्लेख मिलता है। महाभारत को जय-काव्य माना गया है जिसमें वीर काव्य की मार्मिक एवं ओजपूर्ण भावधारा का सरस प्रवाह है। इस युग के ये प्रशंसक अपने राजाओं के शौर्य पराक्रम के वर्णन के साथ ही सरस भावपूर्ण प्रेम-कथाओं का पद्य-बद्ध वर्णन भी किया करते थे। ऐसी कथाओं की अपनी मौखिक परम्परा रही है जिनका अस्तित्व वाणी के सहारे पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर रहा है। समय पाकर अनेक अंगड़ाइयां लेती हुई ये पद्य-बद्ध कथाएँ लिपि-बद्ध हुईं। ऐसी अनेक कथाओं को पुराणों ने अपने 'पुर' की शोभा-श्री का वैभव बना रखा है।

संस्कृत-साहित्य में महाकाव्यों और नाटकों आदि में वीर-काव्य की विविध धाराओं के क्षीण प्रवाह का आभास हम पाते हैं। वीर-रस की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण में युद्ध सम्बन्धी अनेक

× वीर काव्य, पृ० १५, ले० श्री उदयनारायण तिवारी।

अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन मिल जाते हैं। परन्तु ओजपूर्ण उक्तियों के अभाव में युद्ध-वर्णन मानव-मन पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ते।

महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीय' में वीर-रस के उद्रेक के लिए अनेक ओजपूर्ण उक्तियों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। प्रस्तुत एक पद में कवि ने अर्जुन के वीर वेश का बड़ा सजीव वर्णन किया है जब वे किरात से युद्ध करने को जा रहे हैं :

**दिशः समूहन्निव विक्षपन्निव,**
**प्रभांरवेराकुलयनिवालिम।**
**मुनिश्चचाल क्षयकाल दारुणः**
**क्षिति सशैलां चलयन्नि वेषुभि।**

अर्जुन के बाण के कारण दिशायें विक्षिप्त हो जाती हैं, सूर्य प्रभाहीन हो जाता है। वायु आकुल हो जाता है और पर्वतों के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान हो उठती है।

संस्कृत नाटकों में वीर-रस का सुन्दर चित्रण भट्ट नारायण कृत 'वेणी-संहार' नाटक में उच्चकोटि का हुआ है। प्रथम अंक का यह श्लोक भीमसेन के क्रोध की चिन्गारियों को बिखेरता सा प्रतीत होता है जब वे आवेश में आकर सहदेव से कहते हैं। वक्रोक्ति द्वारा कवि ने निषेधात्मक संकेत देकर कथन पर स्वीकृति की मोहर लगा दी है:—

**मथ्नामि कौरवशतंस मेर न कोपा**
**दुशासनस्य रुधिरं पिबाम्युरतः।**
**संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु**
**'धि करोत भवतां नपतिः पणेनः।**

मैं रण में क्रुद्ध होकर सौ कौरवों का विनाश न करूंगा और न दुःशासन के हृदय का ही रक्त पान करूंगा। अपनी गदा से सुयोधन की दोनों जंघाओं को भी चूर्ण न करूंगा। युधिष्ठिर पण से सन्धि कर लेवें। तथा—

महाप्रलय मारूत क्षुभित पुष्करावर्त्तक—
प्रचण्डघन गर्जित प्रति रवानुकारी महुः।
रवः श्रवण भैरवः स्थगित रोद सीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोद घैर यम भूत पूर्वः पुरः॥

आज सामने इस संग्राम-सागर से निकलता हुआ, सृष्टि-संहार-कालीन झंझावात से क्षुभित पुष्करावर्तक मेघों के भीषण तथा गंभीर कड़कड़ाहट की प्रतिध्वनि का अनुकरण करता हुआ, पृथ्वी और आकाश के अन्तराल को पूर्ण करता हुआ कर्ण शुष्कलियों के लिये त्रासजनक और अपूर्ण शब्द किस लियें हो रहा है।

इसके अतिरिक्त भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' में भी लव के स्वरूप निदर्शन तथा वक्रोक्ति कथन में वीरभावों का उल्लेख मिलता हैं। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में अनेक स्थल पर वीर रस पूर्ण भावों की सजीव अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा विकास की दृष्टि से संस्कृत के पश्चात् प्राकृत, पाली और अपभ्रंश की गौरवशालिनी कृतियों का प्रभाव भारतीय साहित्य की विविध शैलियों के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के प्राप्त काव्यों में वीर-काव्य की परम्परा का सूत्र उलझा हुआ, अपने आप में सिमटता हुआ प्रतीत होता है। जैन कवियों का काव्य-विषय प्रमुखतः शान्तरस की मनोहर

भावनाओं के मेल का अभिलाषी रहा है। सिद्ध और नाथ साहित्य की अपनी साधना-भूमि पर साहित्य का सूर्य अपनी अनोखी भाव-भंगिमा, गति-वक्रता का रश्मि वैभव लेकर अग्रसर हुआ है जिसमें जीवन का एक उदात्त-पक्ष अपनी लीला की ज्योति बिखेरता हुआ मानव-भविष्य को अमृत दान दे जाता है। अपभ्रंश की रचनाओं में वीर मुक्तक काव्यों का दर्शन सुलभता से किया जा सकता है। 'स्वयंभू' की कविता वीरभावों की अनुपम अनुक्रमणिका प्रस्तुत करती है जिसमें भावी हिन्दी कविता का स्वर झिलमिला रहा है। स्वयंभू द्वारा रचित मेघवाहन और हनुमान युद्ध तथा सुग्रीव और मेघवाहन युद्ध का वर्णन ओजगुण वैशिष्ट्य को लिये हुये हैं :

किक्किंध णराहिउ धरिउ, जाव। घण-वाहण भा मराडलह ताव।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर। सरि सोत्त स-उत्तरे पहर थोरु।
छिज्जंत महग्गय गरुअ गत्त। णवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु।
लोट्टंत महारह–हय–रहंगु। घुम्मंत–पडंत–महा तुरंगु।
तुट्टंत कवड़ तुट्टंत खग्गु। णाच्चंत कवंधउ असि करग्गु।

अपभ्रंश का यह प्रभाव परवर्ती साहित्य पर प्रचुर मात्रा में पड़ा है।

## हिन्दी वीर काव्य—

हिन्दी काव्य का आरम्भ सिद्ध-योगियों की आध्यात्मिक वाणी एवं योग सम्बन्धी उपदेशात्मक रचनाओं के रूप में माना जाता है। परन्तु काव्य के प्रारम्भिक व्यापक रूप के दर्शन वीरगाथा-काव्य में ही होते हैं। हिन्दी साहित्य का विकास काल अपभ्रंश

की गौरवशालिनी कृतियों के उत्तरार्ध में माना जा सकता है। यह समय १००० ई० तक रहा होगा। इस युग में अपभ्रंश और प्राकृत की रचनायें हिन्दी प्रदेश की पूर्वी और पश्चिमी सीमान्तों और उसके बाहर अन्यत्र हुई हैं। हिन्दी का सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य और प्रारम्भिक चारण साहित्य अपभ्रंश में ही रचा गया है अथवा उससे प्रभावित है।

आदि युग का हिन्दी-साहित्य वीर गाथात्मक है। वीर काव्यों की प्रधान संज्ञा 'रासो' है। रासो ग्रन्थों की रचना राजस्थान, पंजाब, युक्त-प्रान्त तथा बुन्देलखंड आदि प्रान्तों में हुई है। इनमें राजस्थान का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान का प्राचीन साहित्य अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। राजस्थान का उर्वर-मानस उच्च कोटि के सौरभ-युत साहित्यिक कुसुमों से आच्छादित व अलंकृत रहता आया है। हिन्दी साहित्य के आदि काल का महत्व राजस्थान की काव्य-मणियों की परख से ही आंका जा सकता है। हिन्दी साहित्य के आदि काल की भाषा अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी (साहित्यिक-डिंगल) ही है। यहां पर यह कहना असंगत नहीं होगा कि उत्तरापथ के अन्य प्रान्तों में जब साहित्यिक चेतना का सर्वथा अभाव था, उस समय राजस्थान अपनी काव्य गरिमा के उच्च सोपान पर आसीन जीवन की विविध लीलाओं-क्रीड़ाओं के धूप-छांही कौतुक में अनुरत था।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि जब साहित्यिक जड़वाद से जन-मानस असन्तुष्ट होने लगता है तब उसकी स्वाभाविक प्रवृति साहित्यिक विधि-विधानों से मुक्त होकर सरल-भाषा में अभिव्यक्त होने लगती है। अपभ्रंश की साहित्यिक शैली के रूढ़ होने पर उसमें जनता की स्वाभाविक बोली के अनुरूप नवीन प्रयोग हुये।

इस प्रकार अपभ्रंश की क्रोड़ में जनभाषा का अपना अनुपम रूप विकसित होने लगा जो लोक रुचि का आधार पाकर एक आलोकमय भविष्य का निर्माण करने लगा था। जनभाषा का यह साहित्य हिन्दी के आदि युग की मूल्यवान धरोहर है जिसके चरण-चिह्नों पर हिन्दी ने अपने रूप-वैभव में श्री वृद्धि की है।

अपभ्रंश तथा जनभाषा की मुख्य रचनाओं में क्रमशः विजयपालरासो, हम्मीररासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, खुमानरासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराजरासो, जयचन्द-प्रकाश आदि हैं। वैसे इनमें की कुछ रचनायें अप्रमाणिकता एवं संदिग्धता के घात-प्रतिघातों में फँसी सांसों के सितार पर अपने जीवन के तारों को झंकृत कर रही हैं।

## 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति—

वीरगाथात्मक रचनाओं को 'रासो' की संज्ञा से विभूषित किया गया है। विद्वानों ने रासो शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न २ धारणायें व्यक्त की हैं। फ्रैंच-विद्वान गार्सी-द-तासी ने रासो की उत्पत्ति 'राजसूय-यज्ञ' से मानी है। आपके अनुसार ऐसा वीर-काव्य जिसमें राजसूय-यज्ञ सम्बन्धी दिग्विजय का वर्णन हो। परन्तु 'रासो' नामधारी ग्रन्थों के अवलोकन-अध्ययन से विदित है कि उसमें राजसूय-यज्ञ का वर्णन कहीं पर भी नहीं है।

'बीसलदेवरासो' के रचयिता कवि नाल्ह के 'नाल्ह-रसायण आरंभइ' तथा 'नाल्ह कबीसर रसिय बखान' के आधार पर कुछ विद्वानों ने 'रसायण' और 'रसिय' शब्दों से ही 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति मान ली है जिसके अनुसार रासो का प्रयोग रस या

काव्य के अर्थ में पाया जाता है। स्व० आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल इसी आधार पर ही रासो की उत्पत्ति 'रसायण' शब्द से मानते हैं। शुक्लजी के मत से रासो 'रसायण' का अपभ्रंश है। आचार्य शुक्लजी के इस मत का प्रतिपादन काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित ग्रन्थ पृथ्वीराजरासो की परिशिष्ठ टिप्पणी में भी किया गया है। उसके अनुसार रासो शब्द संस्कृत रास अथवा रासक से बना है। संस्कृत भाषा में रास शब्द ध्वनि, क्रीड़ा, शृङ्खला, विलास, गर्जन, नृत्य और कोलाहल आदि अर्थ लिए होता है, तथा रासक काव्य अथवा दृश्यकाव्यादि अर्थ लिए। इस प्रकार रासो शब्द को इन विद्वानों ने काव्य के अर्थ में ही स्वीकार किया है। परन्तु यह मान्यता एक विशिष्ठ शास्त्रीय शब्द के अर्थ पर आधारित है, इसलिये संदिग्ध ही बनी रह जाती है।

राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री नरोत्तमदास स्वामी के मतानुसार 'रासो' का मूल शब्द रास या रासक है। रास का अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी में 'रासउ' हुआ। वही शब्द मध्यकालीन राजस्थानी और ब्रजभाषा में 'रासौ' होकर आधुनिक काल में 'रासो' हो गया। प्राचीन राजस्थानी में रास या रासक का अर्थ कथा-काव्य है। राजस्थानी और गुजराती में सैंकड़ों रास लिखे गये जिनमें से अनेक आज भी उपलब्ध हैं और कई एक छप भी चुके हैं। आगे चलकर रासो वीर रसात्मक और ऐतिहासिक काव्य के अर्थ में प्रयुक्त होनें लगा। यह शब्द 'राइसो' या 'रायसो' रूप में भी मिलता है। *

*राजस्थान भारती भाग १ अङ्क १ अप्रेल १९४६ पृथ्वीराजरासो शीर्षक लेख पृष्ठ २।

इन धारणाओं में श्री नरोत्तमदास स्वामी का मत अधिक समीचीन और तथ्य के निकट जान पड़ता है। आधुनिक राजस्थानी में रासो शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होता है। विशेषकर परस्पर के लड़ाई झगड़े के अर्थ में भी। यथा 'ओ कांई रासो है।' 'म्हे तो इश्या 'रासा' में फँसा कोयनी, थां जानो थांको काम।' वस्तुत; 'रासो' अपने अन्तर की भाव-उर्मियों में युद्ध की ओजस्विनी वीर-भावना की उल्लासमयी और जीवन की विविध रंगिनियों की गौरव गाथा सजोये हुए है। रासो ग्रन्थों में विशेष रूप से वीरता और युद्ध के वर्णनों की ही प्रधानता रही है, पर अन्य रासो में शृङ्गार-वीर-रौद्र वीभत्स आदि काव्य के अनेक पक्षों का समावेश भी यथास्थान उपलब्ध हैं।

हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में 'रासक' को गेय-रूपक माना है। 'संदेश–रासक' इसी प्रकार का रूपक है। संभव है पृथ्वीराजरासो में भी गेय-रूपक के लक्षण विद्यमान रहे होंगे। राजस्थान में रासक 'चरित-काव्यों' के रूप में लिखे गये हैं जिस प्रकार 'विलास' तथा 'रूपक' आदि नाम देकर 'चरित काव्यों' की रचना की गई।

## रासो-ग्रंथ

आधुनिक शोध के आधार पर रासो ग्रन्थों की अनेक अप्रकाशित प्रतियों की चर्चायें सुनने में आई हैं। इन अप्रकाशित ग्रन्थों का मुख्य केन्द्र-स्थल राजस्थान रहा है। राजस्थान के अप्रकाशित ग्रन्थों को सम्मुख लाने का श्रेय श्री पारीक, श्री नरोत्तमदास स्वामी, श्री मुनि जिनविजय तथा श्री अगरचन्द नाहटा आदि अन्य प्रभृति विद्वानों को है, जिन्होंने आदि-काल की सामग्री को एकत्रित करके तथा उस पर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। जैन-लेखकों द्वारा रचित जैन-रासो ग्रन्थों

के उल्लेख भी श्री अगरचन्द नाहटा के शोध-पूर्ण लेखों द्वारा प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त डिङ्गल में 'राणा रासो' तथा 'जलसीरउ' भी अपभ्रंशकालीन काव्य कला के अनुपम उदाहरण हैं।

## खुम्मान-रासो

इन रासो ग्रन्थों में सर्व प्रथम दलपति विजय रचित 'खुम्मान-रासो' को माना जाता है। दलपति विजय मेवाड़ के राणा खुमान (द्वितीय) के समकालीन थे। अपने रासो में इन्होंने खुमान के युद्धों का वर्णन किया है। 'खुमान-रासो' की एक अपूर्ण प्रति पूना (दक्षिण) में भंडारकर-रिसर्च-इंस्टीट्यूट में विद्यमान है, जिसमें ९३९ पृष्ठ तथा आठ खण्ड हैं। कुछ समय पूर्व श्री अगरचन्द नाहटा को खुमानरासो की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है जिसके आधार पर श्री नाहटा नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (भाग २० वर्ष ४४ अंक ४ पृ० ३८७-३८८) के एक लेख में दलपति विजय को तपागच्छ के एक जैन साधु मानते हैं और रासो का रचना काल सं० १७३०-१७६० के मध्य है, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ के संबंध में अभी तक विद्वान एकमत नहीं हो सके हैं।

## बीसलदेव-रासो

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ के लेखक नरपति नाल्ह हैं। ग्रन्थ की लगभग १६-१७ प्रतियां पूर्ण व अपूर्ण अवस्था में प्राप्त हुई हैं। उसका रचनाकाल अनिश्चित सा है क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रतियां रचना-काल की सूचना विभिन्न ही देती हैं। जयपुर तथा बीकानेर की प्रतियों को अन्य प्रतियों से अधिक प्रामाणिक माना गया है। बीसलदेव रासो के चार खण्डों में सांभर के राजा बीसलदेव और मालव की राजकुमारी राजमती की कथा २१५ छन्दों में वर्णित है। ऐतिहासिक

दृष्टिसे इसके कथानक में विद्वानों को सन्देह है। साहित्यिक दृष्टि से इस पुस्तक को अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता, तदपि भाषा और इतिहास की दृष्टि से इस ग्रन्थ का अपना महत्व अवश्य है।

इसी परम्परा में जगनिक का 'आल्ह-खण्ड' अथवा 'परिमाल-रासो' का उल्लेख भी किया जा सकता है। पृथ्वीराज रासो के महोबा खण्ड के ६९ वें समय के आधार पर 'परिमाल रासो' का कथानक माना जाता है। पर 'आल्हा' बानी के सहारे अग्रसर होता हुआ वह अपने वर्तमान रूप में उपलब्ध है।

जगनिक की प्राचीन लिखित प्रति के अभाव में यह कहा जा सकता है कि संभवतः जगनिक की रचना अपने प्राचीन स्वरूप में अपभ्रंश से ही प्रभावित रही होगी।

## पृथ्वीराज रासो : महाकवि चंद बरदाई

महाकवि चन्द बरदाई की प्रसिद्धि 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता के रूप में साहित्य-जगत में फैली हुई है। चन्द हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं। वे महाराज पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, अभिन्न-हृदय सहचर तथा सामन्त कहे जाते हैं। चन्द काव्य की बहुमुखी प्रतिभा लिये हुए थे। इनको षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, नाटक, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष तथा पुराण आदि विषयों का पूर्ण ज्ञान था। सरस्वती के वरद पुत्र होने के साथ ही रुद्र की भैरव-शक्ति का वरदान भी इनको प्राप्त था। रासो में अनेक स्थलों पर इनके शौर्य पराक्रम तथा युद्ध—कौशल का विशद वर्णन है। इनको जालंधरी देवी का इष्ट था जिसकी कृपा के कारण वे अदृष्ट काव्य की रचना भली भांति कर सकते थे। इनका जीवन पृथ्वीराज के साथ 'एक प्राण दो शरीर' रूप मिला हुआ था। सभा, युद्ध, आखेट और यात्रादि अवसरों पर वे सदा पृथ्वीराज के

साथ रहा करते थे। पृथ्वीराज के ये प्रमुख परामर्शदाता और विश्वास-पात्र थे।

कहा जाता है कि अजमेर के चौहानों के यहां इनके पूर्वजों की यजमानी थी। चन्द जाति के भट्ट माने जाते हैं। चन्द का पूरा नाम पृथ्वीचन्द अथवा पृथ्वी भट्ट था। रासो में कुछ स्थानों पर 'पृथ्वी कवि' और 'पहुमि-वन्दीजन' आदि नामों के संकेत मिलते हैं। मुनि जिन विजय द्वारा खोजे गये जैन-प्रबन्धों में उसका नाम 'चन्द बरद्दिया' दिया गया है और उसे द्वारभट्ट कहा गया है। 'पृथ्वीराज-विजय' नामक अपूर्ण संस्कृत काव्य पुस्तक में पृथ्वीराज के एक भट्ट कवि का नाम 'पृथ्वी-भट्ट' दिया हुआ है। परन्तु प्रारम्भ में ही जहां पृथ्वीराज का चरित्र वर्णित है यह प्रति खण्डित होगई है। अतः 'पृथ्वीराज विजय' के आधार पर यह कहना कि चन्द नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में नहीं था न्याय-संगत प्रतीत नहीं होता। यह तो दृढ़ता से ही कहा जायगा कि चन्द नाम का कवि अवश्य था और उसने 'पृथ्वीराज रासो' नामक काव्य की रचना की थी।

## चन्द का जीवन-काल

'पृथ्वीराज रासो' में चन्द के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम के अनुसार कविचन्द अजमेर नरेश सोमेश्वर के दरबार में पृथ्वीराज के जन्म से पूर्व ही आ गये थे और उनके विश्वासपात्र भी बन चुके थे। रासो के निम्न छन्द से विदित होता है कि दिल्ली में अपने श्वसुर अनंगपाल के यहां पृथ्वीराज का जन्म समाचार सुनकर सोमेश्वर अतीव प्रसन्न हुए और उन्होंने 'लोहाना' और 'चन्द' को बुलाकर पृथ्वीराज को अजमेर ले आने के लिए कहा :

तव बुलाय सोमेसवर, लोहानो अरु चन्द ।
लै आवहु अजमेर घर, पहौते घरह सु इन्द ।
छन्द ६९२, स०९ ।

द्वितीय, 'रासो' के निम्न इस छन्द में यह भी वर्णित है कि चन्द और पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था :

कहे तास कवि चन्द अहो वीराधि वीर सुनि ।
हम मनुच्छ मय मोह उदधि बुड्ड सुतत्त तुनि ।
हमहि राज इक वास सथ्थ उतपन्न संग सदि ।
नेह बंध बंधिये करिय अति प्रीति राज रिदि ।
सामंत सकल अति प्रेम तर बाल नेह उर धुर कियो ।
बलिभद्र नेह संसार सुष किम सुनेह छंडं जियौ ।
छन्द १७०२,स०६६ ।

राजस्थान में प्रचलित अनुश्रुतियों के आधार पर यही मानना युक्ति संगत होगा कि चन्द और पृथ्वीराज का जन्म और मृत्यु एक ही दिन हुए होंगे। इस प्रकार सोमेश्वर द्वारा चन्द को बुलाकर पृथ्वीराज को दिल्ली लेने भेजना क्षेपक सिद्ध हो सकता है ।

'रासो' के कतिपय छन्द भी इस मत की पुष्टि करते हुए महाकवि चन्द और पृथ्वीराज के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों का उल्लेख करते हैं। दोनों की समवयस्कता के पुष्ट प्रमाण 'रासो' में उपलब्ध हैं। यथा :

ढुंढ रूप दानव उतंग बोलि आना नरिंद दिय ।
अस्ति सकल सामन्त तेज पृथिराज वीर विय ।
बल विक्रम अति सूर जोह कवि चन्द प्रमानं ।
एक ठाम उप्पजे एक थल मरन निधानं ।

संजाल काल दिल्ली रहौं, चौसट्ठा टोडर समनि।
दैवत्त पद्द देवान गति, दैव गत्ति जोगा सघनि।

छन्द ५५६, स० ६७।

## परिवार

चन्द का जन्म स्थान लाहौर माना जाता है पर हमारे विचार से उसका राजस्थानी होना अधिक सम्भव है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि "अजमेर में चन्द बरदाई जैसे महाकवि का होना उचित ही है। समुद्र में ही कौस्तुभ-मणि के उत्पन्न होने की सम्भावना सोची जा सकती है।"

( हिन्दी साहित्य का आदि काल )

'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर चन्द के पिता का नाम 'राव-मल्ह' था किन्तु उसकी माता के सम्बन्ध में रासो में कुछ संकेत प्राप्त नहीं है। चन्द के दो पत्नियां थीं। प्रथम का नाम कमला और द्वितीय का नाम गौरी था। गौरी के ही द्वारा पृथ्वीराज के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर चन्द ने अपनी पत्नी से रासो की कथा कही थी। इन दो पत्नियों से चन्द के एक कन्या तथा दस पुत्र थे कन्या का नाम राजबाई था। पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं:

सूर, सुन्दर, सुजान, जल्हण, बलिभद्र, केहरि, वीरचन्द, अवधूत और गुनराज। कहते हैं चन्द के इन दस पुत्रों में सबसे अधिक योग्य, बुद्धिमान, विद्वान, प्रतिभाशाली पुत्र जल्हण ही था, जिसको काव्य रचना का भी उत्तम ज्ञान था। गजनी को प्रस्थान करने से पूर्व चन्द ने जल्हण ही को 'रासो' ग्रन्थ सौंपा था:—

आदि अन्त लगि वृत्त मन, बेलि गुनी गुनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चले गज़्जन नृप काज।

छन्द ८५, स० ६७।

परन्तु श्री अगरचन्द नाहटा को जो प्राचीन प्रतियां प्राप्त हुई हैं उनमें यह पद नहीं है। निम्न पद को नाहटा जी प्रामाणिक मानते हैं :

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि ।
पृथिराज सुजस कवि चन्द कृत, चन्द-नंद उद्धरिय तिमि ।

इस पद्य में 'चन्द नन्द' के स्थान पर 'चद्रसिंह उद्धरिय तिमि' का उल्लेख है। इसी आधार पर श्री नाहटा जी जल्हण की अपेक्षा चन्द्रसिंह को ही रासो का उद्धारकर्त्ता स्वीकार करते हैं। ×

स्मरण रहे कि 'रासो' से प्राप्त चन्द के दस पुत्रों में चंद्रसिंह कोई नहीं है। अतः इस दृष्टि से चंद के पुत्र के हाथों रासो का उद्धार न होकर चंद्रसिंह के द्वारा हुआ होगा यह विचारणीय प्रश्न है।

अंततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि चंद की जीवनी के संबंध में जितनी सामग्री प्राप्त हुई है सभी पर संदिग्धता की मुहर लगी हुई है। रासो की उपलब्ध सभी प्रतियां विभिन्न वाणी बोलती हैं। इस पर भी इतना तो अवश्य ही कहा जायेगा कि चंद और पृथ्वीराज का जीवन चरित्र गंगा-यमुनी धाराओं का सुन्दर संगम रहा है जिसमें दोनों की छवियां अपनी निराली शोभा लिए हुए हैं।

## रासो में अनुश्रुतियों का समन्वय

हिंदी की वीर गाथ परम्परा में 'पृथ्वीराज रासो' का अपना विशिष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रंथ के रचयिता के रूप में चंद बरदाई और उसके नायक पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित्र सर्वसाधारण में विख्यात है। परन्तु साधारण ख्यात एवं वैज्ञानिक

---

× 'राजस्थानी पत्रिका' पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियां पृष्ठ १४

सत्यता में अंतर रहता है। किसी प्रांत वा प्रदेश की ऐतिहासिक किंवदन्तियों का बाहुल्य उसके विशिष्ठ इतिहास बोधक का परिचायक अवश्य है। सभी देशों में इतिहास के साथ चली आरही परम्परागत अनुश्रुतियां इस भांति मिली रहती हैं कि उनका पृथक्करण यदि असम्भव न हो तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनुश्रुतियां मौखिक रूप से युगों तक परिवर्तनों के घात प्रतिघात को सहते हुए अपने अस्तित्व को स्थिर रखती हैं। यही कारण है कि उनमें क्षेपकों का समावेश हो जाता है। अतएव वैज्ञानिक पद्धति से आंकने वाले इतिहासकार पृथ्वीराज रासो को ऐतिहासिक दृष्टि से संदेहपरक मानें तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है'।×

अतः रासो की प्रामाणिकता पर विचार करने के पूर्व पृथ्वीराज रासो तथा उसमें वर्णित कथा का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ना० प्र० सभा से प्रकाशित ग्रंथ के आधार पर रासो एक प्रबंध महाकाव्य है जो ६९ समयों में परिसमाप्त हुआ है। उसमें आबू के यज्ञ कुंड से चार क्षत्रिय राजकुलों की उत्पत्ति, चौहानों की अजमेर में राज-स्थापना, पृथ्वीराज के शौर्य पराक्रम का ओजपूर्ण शैली में वर्णन, उसके अनेक विवाहों का माधुर्यपूर्ण विवरण से लेकर पृथ्वीराज के गोरी द्वारा कैद किये जाने का विस्तृत प्रभाव-युक्त आंकलन है। इसके इस विस्तृत रूप को देखकर ही कर्नल टाड ने इसे 'तत्कालीन विश्व-इतिहास' (The Universal History of the period) कहा है।

## 'रासो' की संक्षिप्त कथा

प्रारम्भ में कवि ने आदि देव, गुरु, वाणी, मुक्ति तथा पूर्व

---

× 'इतिहास और अनुश्रुतियां', डा० कन्हैयालाल सहल, (जनमन मासिक) अंक १, १९५५ पृष्ठ १०।

कवियों आदि की स्तुति की है। चन्द की पत्नी के प्रश्न पर ग्रन्थ आरम्भ होता है। चन्द पुराणों, गणेश, शिव, सरस्वती की स्तुति, दुष्ट जनों के स्वभाव आदि का वर्णन करते हुए काव्य का परिचय देता हुआ 'रासो' का महत्त्व वर्णन करता है। फिर अनेक पौराणिक कथाओं तथा वशिष्ठ के यज्ञ का वर्णन है, यज्ञ से चहुंवान की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार चन्द छत्तीस क्षत्रिय वंशों के नाम और चौहान वंशों की उत्पत्ति का वर्णन करके पृथ्वीराज के पितामह अर्णोराज का वर्णन करता है। वह इस प्रकार है : अजमेर के चौहानवंशी राजा अर्णोराज के पुत्र सोमेश्वर चौहान शाकम्भरी प्रदेश के अधिपति थे तथा अपनी राजधानी अजमेर में ही निवास करते थे। उस समय दिल्ली के अधीश्वर अनंगपाल तोमर तथा कन्नौज के राजा विजयपाल कमध्वज थे। किसी विशेष कारणवश विजयपाल कमध्वज ने दिल्ली पर आक्रमण किया। अनंगपाल ने दूत द्वारा सोमेश्वर से सहायता की याचना की। सोमेश्वर ने अपनी वीरवाहिनी को सजा कर दिल्ली की रक्षा के हेतु प्रस्थान किया। दिल्ली और शाकम्भरी की सम्मिलित वाहिनी ने दिल्ली की रक्षा की। विजयपाल कमध्वज उस समय उत्तरी भारत में चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में विख्यात थे। उनके पास अगणित सैन्य समूह था और वे दिग्विजय भी कर चुके थे। परन्तु उनकी दिग्विजय अधूरी रही, वे दिल्ली को विजय न कर सके।

अनंगपाल के दो कन्याएँ थीं। पुत्र एक भी नहीं था। उनकी छोटी कन्या का नाम कमला तथा बड़ी का नाम सुरसुन्दरी था। अनंगपाल ने अपनी छोटी कन्या कमला का विवाह चौहान नरेश सोमेश्वर के साथ कर दिया तथा विजयपाल कमध्वज से बड़ी पुत्री सुरसुन्दरी का विवाह करके उससे सन्धि कर ली।

सोमेश्वर के कमला से उत्पन्न पुत्र पृथ्वीराज हुए तथा विजयपाल के सुरसुन्दरी (अथवा अन्य किसी रानी) से उत्पन्न जयचन्द हुए। सम्भव है जयचंद सुरसुन्दरी के ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों, क्योंकि रासो के ४८ वें समय में एक स्थान पर जयचन्द ने पृथ्वीराज से 'मातुल हम तुम इक्क' कहा है। विजयपाल की मृत्यु के उपरान्त जयचन्द कन्नौज के अधिपति हुए।

अनंगपाल के कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने अपने नाती पृथ्वीराज को गोद ले लिया। वृद्धावस्था में जब अनंगपाल बदरीनारायण की यात्रा को प्रस्थान करने लगे तब अपना राज्य पृथ्वीराज को सौंप गए। इस प्रकार अनंगपाल के देहावसान के पश्चात अथवा जीवनकाल में ही पृथ्वीराज चौहान दिल्ली और अजमेर दोनों के अधिपति बन गये।

पृथ्वीराज चौहान के बढ़ते हुए उत्कर्ष को कन्नौजाधिपति राजा जयचन्द सहन न कर सके और वे मन ही मन उनसे द्वेष भाव रखने लगे। जयचन्द ने अपना भी उत्कर्ष दरसाने के हेतु तथा पृथ्वीराज का निरादर करने की ठान कर राजसूय-यज्ञ की रचना की तथा साथ ही अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंबर की भी घोषणा की। इस राजसूय-यज्ञ में पृथ्वीराज के सम्मिलित न होने पर जयचन्द ने क्रोधाभिभूत होकर पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर द्वारपाल के स्थान पर स्थापित करदी। स्वयंबर में संयोगिता ने, जो कि पृथ्वीराज की वीरता और सौन्दर्य पर पहिले ही से अनुरक्त थी, वरमाला पृथ्वीराज की प्रतिमा के गले में पहना दी। जयचन्द अपनी पुत्री के इस कृत्य से अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ और उसने संयोगिता को गंगा तटवर्ती एक प्रासाद में कैद करके निर्वासन-दण्ड दिया। पृथ्वीराज को जब यह समाचार

प्राप्त हुआ तो वे अपने सखा और सामंत चंद के साथ वहां जा पहुंचे। रात्रि को संयोगिता के साथ उन्होंने विधि-पूर्वक विवाह किया। उसे लेकर वे चन्द के आवास में चले गये। प्रातःकाल पृथ्वीराज ने दिल्ली प्रस्थान करने से पूर्व जयचन्द के पास इस बात की सूचना देने के लिए भेजा। प्रथम कवि चन्द ने कहा–'झगड़ा बढ़ाने में कोई लाभ नहीं तुम्हारा कार्य सिद्ध होगया, घर लौट चलो'। परन्तु पृथ्वीराज ने कहा–"मैं चोर नहीं हूं, जिसमें साहस हो वह मुझे रोके।" अन्त में, पृथ्वीराज की आज्ञा से चंद ने जयचन्द के दरबार में जाकर कहा–"दिल्लीश्वरी महारानी संयोगिता अपने पति के घर जा रही हैं, और अपने पिता के आशीर्वाद की प्रतीक्षा करती हैं।" इस समाचार से जयचन्द की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने अपनी सेना के वीर सामन्तों को पृथ्वीराज और संयोगिता को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी। मार्ग में घनघोर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज और उनके सरदार वीरता से युद्ध करते हुए लौट आये। अन्त में, जयचन्द ने पृथ्वीराज और संयोगिता के विवाह को स्वीकार कर लिया और बहुत-सी संपति दहेज में दी। परन्तु हृदय में जयचन्द के प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित होती रही। उधर नव-विवाहिता सौन्दर्य यौवन से भरपूर संयोगिता के मधुर संयोग को पाकर पृथ्वीराज का जीवन भोग-विलास की क्रीड़ा में व्यतीत होने लगा।

उधर गौर देश का बादशाह शहाबुद्दीन गौरी अपने एक पठान मीरहुसैन की प्रेमिका चित्ररेखा पर मुग्ध हो गया था। पठान सरदार भाग कर पृथ्वीराज की शरण में आ पहुँचा। पृथ्वीराज ने उस पर अभय का हाथ रख दिया। शहाबुद्दीन गौरी ने उसे लौटा देने के लिए दूत भेजा, किन्तु पृथ्वीराज ने शरणागत की रक्षा का पवित्र भाव रख कर गौरी के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

इधर जयचन्द ने भी गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। गौरी ने अनेक बार पथ्वीराज पर आक्रमण किया और हर बार परास्त होकर उसे मुंह की खानी पड़ी। अन्त में गौरी ने छल से पृथ्वीराज को पकड़ लिया और गजनी लेगया। वहां उसने पृथ्वीराज की आंखें निकलवा कर उन्हें कारागार में डाल दिया। चन्द कवि गजनी पहुँचे तथा एक महोत्सव के अवसर पर गौरी से पृथ्वीराज के शब्दभेदी बाण की प्रशंसा की। गौरी को कौतूहल हुआ और परिणाम स्वरूप सात तवे टांगे गये और उनमें से एक पर शब्द किया गया, पृथ्वीराज ने उसे एक ही बाण से तुरन्त बेध दिया। गौरी प्रसन्न होकर चिल्ला उठा, 'शाबास!' यह शब्द सुन चन्द का संकेत पाकर पृथ्वीराज ने गौरी को बाण मार दिया। फिर अंत में चंद और पृथ्वीराज दोनों परस्पर एक दूसरे को मार कर मृत्यु को प्राप्त हुए। इस सम्बन्ध में यह दोहा भी प्रसिद्ध है:

**चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।**
**ता ऊपर सुलतान है, मत चूकै चौहान॥**

संक्षेप में पृथ्वीराज रासो की मूल कथा यह है। रासो के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि ने कुछ घटनाओं का विशद वर्णन किया है। विशेषकर पृथ्वीराज के अनेक विवाहों, युद्धों और आखेट आदि वर्णनों का बड़ा ही मनोमुग्धकारी रोचक वर्णन किया गया है। पर क्षेपकों के समावेश से मूलकथा में महान परिवर्तन हो गया है।

## 'रासो' के उपलब्ध रूपान्तर

'पृथ्वीराजरासो' पर की गई अब तक की शोध के आधार पर

रासो के चार संस्करण अथवा रूपान्तर उपलब्ध हुए हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं:—

## (१) वृहत् रूपान्तर

इस रूपांतर की अनेक प्रतियां उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित संस्करण का आधार यही बृहत् रूपांतर है। इसकी सभी प्रतियों का रचना काल सं० १७५० के बाद का ही है। परंतु इस संस्करण की प्रति सं० १६४२ की बतलाई जाती है। इस प्रति के संबंध में श्री नरोत्तमदास स्वामी का मत है कि अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व की यह नहीं हो सकती। इस प्रति के अनुसार 'रासो' में ढाई हजार पृष्ठ तथा ६९ समय बताए गये हैं। इसकी छन्द संख्या १६३०६ है। इसकी कुछ प्रतियों में अध्यायों को 'समयों' तथा कहीं कहीं 'प्रस्ताव' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस रूपांतर पर क्षेपककारों की विशेष कृपा रही है। इसका ६९ वां अंतिम 'महोवा समयों' बहुत पश्चात् 'आल्ह-खंड' से जोड़ा गया प्रतीत होता है।

## (२) मध्यम रूपान्तर

यह रूपांतर वृहत् रूपांतर से आकार में लघु है। अब तक इस रूपांतर की चार प्रतियों का पता लग चुका है। उनमें से एक प्रति पंजाब विश्व-विद्यालय [ओरियंटल कॉलेज, लाहौर] के पुस्तकालय में, एक अबोहर के साहित्य-सदन में, एक बीकानेर के बड़े उपाश्रय में, तथा एक श्री अगरचंद नाहटा के संग्रहालय में है। पंजाब वाली प्रति को पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित प्रामाणिक 'रासो' मानते हैं।

इस प्रति का प्रकाशन भी टिप्पणी सहित हो चुका है। इस प्रति को प्रामाणिक मानने का एक कारण यह है कि इसकी छंद संख्या सात हजार है जो 'सत-सहस्र से' गणना करने पर मिलती है। अबोहर वाली प्रति का समय संवत् १७४० के निकट ठहरता है। श्री अगर चन्द नाहटा के पास वाली प्रति का लिपि काल सं० १७६२ है। अतएव संवतों के इन रूपों को देखते हुए सभी प्रतियों को संवत् १७६० के पश्चात् की ही माननी पड़ेगी। इस रूपांतर में अध्यायों का नाम 'प्रस्ताव' दिया गया है।

## (३) लघु रूपान्तर

इस रूपांतर की चार प्रतियां उपलब्ध हुई हैं। तीन प्रतियां बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में तथा एक प्रति श्री अगरचंद नाहटा के संग्रहालय में है। श्री नाहटा जी के अनुमान से इसकी श्लोक संख्या साढ़े तीन हजार के लगभग है। और प्रतियों के अनुसार समय संख्या १९ है। इन प्रतियां की उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से दो प्रतियों में वह छन्द मिलता है जिसके अनुसार रासो चन्द बरदाई के पुत्र जल्हण द्वारा सम्पूर्ण नहीं होकर 'चन्द्रसिंह' नाम के किसी व्यक्ति के द्वारा पूर्ण होता है। वे पंक्तियां निम्न हैं:—

रघुनाथ चरित हनूमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजसु कवि चन्द कृत, चन्द्रसिंह उद्धरिय इमि॥

पूर्व छन्द में 'चन्द नन्द उद्धरिय तिमि' के स्थान पर 'चंद्रसिंह उद्धरिय इमि' पाठ मिलता है। इनमें से एक प्रति १७ वीं शताब्दी की है। श्री नाहटाजी वाली प्रति १७२८ की है। शेष दो पर सम्वत् का उल्लेख नहीं है। अनूप संस्कृत पुस्तकालय की तीनों प्रतियां

परस्पर मिलती हुई हैं परन्तु श्री नाहटा जी वाली प्रति में कहीं कहीं भिन्नता लक्षित होती है। पाठ और रूप दोनों में अन्तर है। इसमें अध्यायों का नाम 'खण्ड' दिया गया है।

इन तीन रूपान्तरों में केवल मुख्त बात विस्तार या परिणाम की ही है। भाषा भी एक सी है तथा इतिहास विरुद्ध बातें न्यूनाधिक मात्रा में तीनों में ही विद्यमान हैं। अतः तीनों रूपांतर अपने आकार के विशाल एवं लघु रूपों में कुछ अशुद्धियों को लिए है। लघु रूपों में संख्या स्वभावतः ही न्यून है।

## लघुतम रूपान्तर

इस रूपान्तर के शोध का श्रेय श्री अगरचन्द नाहटाजी को है जो इन सब रूपान्तरों से संक्षिप्त है। परिमाण में वह लघु रूपान्तर के अर्ध भाग से भी संक्षिप्त है। लिपिकार ने इसकी पद संख्या १३०० प्रमाण लिखी है। इसकी भाषा कुछ प्राचीन है तथा इसमें अध्यायों का विभाजन नहीं किया गया है। इसका लिपि काल सं० १६६७ माना गया है। इन चार रूपांतरों में से किसी में भी 'रासो' का मूल रूप संरक्षित नहीं है।

इसके अतिरिक्त प्रो० रमाकांत त्रिपाठी द्वारा चंद बरदाई के वंशज कहलाने वाले नागौरी नानूराम भट्ट से 'रासो' की दो प्रतियां प्राप्त हुई हैं। जो चंद के पुत्र 'भल्ल' कृत मानी जाती है। इन प्रतियों की पुष्पिका से इनका लिपिकाल सं० १४५२ ठहरता है यथा—संवत् १४४५ बरसे शरद ऋतौ आश्विनमासो शुक्ल पक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखतं।*

*'महाकवि चंद के वंशधर', मारवाड़ी-अंक 'चाँद' पृ० १४९-१५० ले० प्रो० रमाकांत शास्त्री।

परन्तु प्रमाणों की कसौटी और भाषा के आधार पर विचार करने पर यह प्रति भी प्रमाणिक नहीं मानी जा सकती । पं. हरप्रसाद शास्त्री को भी श्री नानूराम भट्ट ने 'महोबा समय' की एक प्रतिलिपि दी थी किन्तु भाषा की दृष्टि से वह भ्रष्ट है । श्री अगरचंद नाहटा द्वारा उद्धृत इस पंक्ति से यह जाना जा सकता है कि उसकी भाषा बहुत अर्वाचीन है ।

एक पहुर मं सांवत सारे । लोह हजार पांच तहं मारे ।

इस प्रकार अब तक प्राप्त हुए रूपांतरों एवं प्रतियों के आधार पर यही माना गया है कि 'रासो' नामधारी उपलब्ध होने वाली सामग्री संदिग्ध है । उसके आकार-प्रकार की विशालता और समाविष्ट हुए क्षेपकों के जाल को देख कर उसके वास्तविक रूप का जानना अत्यंत कठिन होगया है । वस्तुतः 'पृथ्वीराजरासो' अपने मूलरूप में अपभ्रंश में ही लिखा गया होगा जैसा कि मुनि जिन-विजय द्वारा जैन प्रबंधों से उद्धृत उदाहरणां से सिद्ध है । आकार में भी यह प्राचीन राजस्थानी के अन्यान्य 'रासो' की ही भांति संक्षिप्त रहा होगा ।

राजस्थान के चारण और भाट कविता को कण्ठस्थ रखते थे और लिपि बद्ध करने का कष्ट नहीं उठाया करते थे । परिणाम यह होता था कि समय के साथ २ भाषा में भी महान परिवर्तन हो जाता था और क्षेपकों का समावेश तो साधारण सी बात रही है । इसी प्रकार 'रासो' की भी यही स्थिति रही होगी और अब तक जो संस्करण उपलब्ध हुए हैं उनमें भाषा, संवत् तथा घटनाओं में महान परिवर्तन उत्पन्न हो गया है । इसी परिवर्तन के कार इतिहासकार 'रासो' को जाली और अप्रमाणिक ग्रन्थ मानते हैं ।

परन्तु अब तक की खोजों के आधार पर तथा मुनि जिन विजय द्वारा उद्धृत इन निम्नलिखित चार पदों से 'रासो' के अस्तित्व को स्वीकार किया जाने लगा है।

मुनि जिन विजय ने पुरातन-प्रबंध-संग्रह (सिंघी जैन ग्रन्थमाला पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचन्द विषयक प्रबन्धों में चार ऐसे छंदों को उद्धृत किया है जिन्हें वे चंद कवि द्वारा रचित मानते हैं। मुनि जी अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं–"चंद कवि निश्चित ही एक ऐतिहासिक पुरुष था वह दिल्लीश्वर हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित राजकवि था। उसने पृथ्वीराज के कीर्ति-कलाप का वर्णन करने के लिए प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की जो 'पृथ्वीराजरासो' के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई।" उन चार छंदों में से तीन का रूपांतर काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'रासो' में प्राप्त हो गया है। परन्तु चौथा छंद अभी प्राप्त नहीं हो पाया है। छंद इस प्रकार हैं:—

## (१) मूल रूप

इक्कु बाणु पहु बीस जु पइं कइंवासह मुक्कओ,
उर भितरी खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीऊं भंभई सूमेसर नंदण,
एहु सु गड़िदाहिमओ खणह खुद्दइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लब्भिउ बाइइ पलकउ खल गुलह।
न जांनऊं चन्दबलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥

पृ० ८६ पद्यांक २७५।

## रूपांतरित रूप ( रासो में )

एक बान पहु भीनरेस कैमासह मुक्यो ।
उर उप्पर थरहर्यो बीह कष्षंतर चुक्यो ।
बियो बान संधान हन्यो सोमसर नंदन ।
गाढ़ो करि निग्रह्यो षनिब गाड्यो संभरि धन ।
थल छोरि न जाई अभागरो गाड्यौ गुन गहि आगरौ ।
इम जंपै चन्दवरद्दिया कहा निघट्टै इय प्रलौ ।

रासो, पृ० १४६६ पद २३६ ।

## (२) मूलरूप

अगहु मगहि दाहिमओ रिपुराय स्वयं करु ।
कूडु मंत्र ममठवओ एहु जंबूय ( प ? ) मिलि जग्गरु ।
सहनामा सिक्खंवउं जइ सिक्खविउं बुज्झइं,
जंपइ चन्दवलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ ।
पहु पहुविराय संहभरि धनी सयंभरि धनि सउणइ संभरिसि ।
कहंबास विआम विसट्ट विणु मच्छि बंधिवद्धओ मरिसि ।

पृ० ८६ पदांक २७६ ।

## रूपांतरित रूप ( रासो में )

अगह मगह दाहिमौ देव रिपुराई षयंकर ।
कूर मंत जिन करौ मिले जंबू वै जोंगर ।।
मो साहनामा सुनौ एह परमारथ सुज्झै ।
अष्षै चन्द बिरद्द बियौ कोई एह न बुज्झै ।।
प्रथिराज सुनवि संभरि धनी इह संभलि संभारि रिस ।
कैमास बलिष्ठ बसीठ बिन मलेच्छ बंध बंध्यो मरिस ।।

रासो पृ० २१८२ पद ४७६ ।

## (३) मूल रूप

त्रिण्हि लक्ष तुषार सबल पाषरिअइं जसु हय,
चऊदसय मयमत्त दंति गज्जंति महामय ।
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर,
ल्हूसडु अरु बलु यान संख कु जाणइ तांह पर ।
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विहि विनिडिओ हो किम भयउ ।
जइचन्द न जाणउ जल्हूकह गयउ कि मूउ कि धरि गयउ ।।
पृ० ८८ पदांक २८७ ।

## रूपांतरित रूप (रासो में)

असिह लष्ष तोषार सजउ पष्षर सायद्दल ।
सहस हस्ति चवसट्ठि गरुअ गज्जंत महाबल ।
पंच कोटि पाइक्क सुफ़र पाटक्क धनुध्दर ।
जुध जुधान बार बीर तोन बंधन सद्धनभर ।
छत्तीस सहस रन नाइबो विहि क्रिम्मान ऐसो कियौ ।
जैचन्द राय कवि चन्द कहि उदधि बुड्डि कै धर लियौ ।।
रासो पृ० २५०२ पदांक २१६ ।

## (४) मूल रूप

जइतचन्दु चक्कवइ दवे तुह दूसह पयाणइ ।
धरणि धसिवउद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ ।
सेसुमाणींहि सकियउ मुक्कु हय खरिसिर खंडिओ ।
तुट्टिओ सोहर धवलु धूलि जसुचियतणि मंडिओ ।
उच्छहरिउ रेणु जसग्गिराय सुकवि व ( ज ) ल्हु सच्चउ चवइ ।
वग्ग इंदु बिंदु भुवजु अलि सहस नयण किण परि मिलइ ।।
पृ० ८८-८९ ।

## 'रासो' का रचना काल

'पृथ्वीराज रासो' की रचना काल के सम्बन्ध में विद्वत-मंडली में बड़ा मतभेद है। डिंगल भाषा में रचित होने के कारण कुछ आलोचक इसे बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी की ही रचना मानते हैं। किन्तु क्षेपकों के समाविष्ट के कारण भाषा के विकृत रूप को देखते हुए कुछ आलोचक 'रासो' को सोलहवीं शताब्दी के आसपास की रचना मानते हैं। महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा विक्रम संवत् १६०० के आसपास ही 'रासो' का रचना काल मानते हैं। अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं वे निम्नलिखित हैं:—

(१) विक्रम सं० १४६० में हम्मीर महाकाव्य की रचना हुई। उसमें चौहानों का विस्तृत इतिहास है परन्तु उसमें 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहानों को अग्नि–वंशी नहीं लिखा और न उसकी वंशावली को ही आधार माना गया है इससे ज्ञात होता है कि 'पृथ्वीराज रासो' उस समय तक प्रसिद्धि में नहीं आया, यदि 'रासो' की प्रसिद्धि होगई होती तो 'हम्मीर महाकाव्य' का लेखक उसके आधार पर चलता।

'रासो' में चौहानों को अग्निवंशी नहीं लिखा गया है। 'अनल चाहुआन' की उत्पत्ति के आधार पर उनको अग्निवंशी ही माना जाना चाहिए न कि सूर्यवंशी। अग्नि और सूर्य का पर्य्याय होने से अग्नि को सूर्यवंशी भी काव्य प्रणेताओं ने मान लिया है। अनुश्रुति भी चौहानों को अग्नि-वंशी ही मानती आई है। साथ ही, हम्मीर-महाकाव्यकार को 'रासो' के आधार पर ही चलने का विशेष कारण कोई महत्व की बात नहीं

है। यह तर्क पुष्ट नहीं कहा जा सकता। अपितु प्राचीन पुस्तकों तथा लेखों में रासो की वर्णित घटनाओं के अंश विद्यमान हैं।

(२) चन्द बरदाई ने रावल समरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुम्भा का बीदर के मुसलमान के यहाँ जाना लिखा है। पृथ्वीराज के समय में तो दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश भी नहीं हुआ था। बीदर का राज्य तो बहमनी राज्य की उन्नति के समय में अहमदशाहवली ने ई० सन १४३० (वि० सं० १४८७) में स्वतन्त्र रूप से स्थापित किया। इससे यह निश्चित है कि 'पृथ्वीराज रासो' उक्त संवत् के पीछे बना होगा।

इतिहास से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ६३६ में खलीफा उमर के समय से भारत पर बराबर मुसलमानों के आक्रमण होते रहते थे। यहां तक कि खलीफा मंसूर और हारू के दरबार में भारतीय विद्वानों का आदर होता था। इस प्रकार आवागमन का क्रम बहुत पहले ही बन गया था। पृथ्वीराज के समय तक तो मुसलमानों का प्रवेश भारत में अनेकों बार हुआ है। श्री अगरचन्द नाहटा तथा देवलिया की प्रतियों में कुम्भा का बीदर के बादशाह के पास जाने की घटना का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भव है यह अंश क्षेपक रूप से बाद में जोड़ दिया गया हो।

(३) चन्द बरदाई ने सोमेश्वर और मेवात के मुगल राजा से लड़ाई और उसमें उसके कैद होने तथा उसके पुत्र वाजिदखां के मारे जाने की कथा लिखी है। भारत में मुगल राज्य वि० सं० १२८३ में बाबर ने स्थापित किया। इससे पूर्व भारत में मुगलों का कोई राज्य था ही नहीं और उनका सबसे पहिले प्रवेश मुगल तैमूर-

लंग द्वारा वि० सं० १४५५ में हुआ, जिससे पहिले मुगल राज्य की भारत में कल्पना भी नहीं की जा सकती। इससे स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' वि० सं० १५८३ से और यदि बहुत पहिले भी मानें तो वि० सं० १४५५ से पूर्व नहीं बन सकता है।

'रासो' में मेवाड़-पति को 'मुंगल' लिखा है न कि 'मुगल'। यथा 'उत्त मुंगल महिइन्द'। 'दियं कग्गंद मुंगल राजथानम्' (समय ८ पृ० ३७२)। अतः, कहीं कहीं पर लिपि दोष से मुगल पाठ होना सम्भव है। एक दो स्थलों को छोड़ कर सर्वथा सर्वत्र 'मुंगल' शब्द ही लिखा गया है। 'रासो' की कथा वर्णन से प्रतीत होता है कि वह मुगल बादशाह नहीं था, वरन् उसके हिन्दू होने का ही वर्णन है। (स० ८ पृ० ६७० छ० ७-८) अतः यह स्पष्ट है मेवाड़पति मुगल बादशाह नहीं था। उसका नाम मुंगल था और वह क्षत्रिय वीर योद्धा था तथा रानी दाहिमी के कारण पृथ्वीराज की साली का पति होता था। वाजिद खां उसका लड़का नहीं था वरन् पठान जाति का वीर था और मुंगल के पक्ष में था—'वाम अंग पट्ठान विरंचवाजिन्द सपिन्निय"। श्री ओझा जी का यह तर्क भी युक्ति संगत नहीं ठहरता।

(४) महाराजा कुंभकर्ण ने वि० सं० १४१७ में कुंभलगढ़ के किले की प्रतिष्ठा की और वहां के मामादेव (कुंभस्वामी) के मंदिर में बड़ी बड़ी पांच शिलाओं पर कई सौ श्लोकों का एक विस्तृत लेख-काव्य खुदवाया, जिसमें मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का बहुत कुछ वृतान्त दिया है। इसमें पृथ्वीराज की बहिन पृथा से समरसिंह के विवाह करने का या उसके साथ शाहबुद्दीन की लड़ाई में मारे जाने का कोई वर्णन नहीं है। वि० सं० १७३२ में महाराज राजसिंह ने अपने बनवाये हुए रायसमुद्र के नौ चौकी

नामक बांध पर पच्चीस बड़ी बड़ी शिलाओं पर एक महाकाव्य खुदवाया, जो अब तक विद्यमान है। उसके तीसरे सर्ग में लिखा है "समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथा से विवाह किया और शहाबुद्दीन के साथ लड़ाई में मारा गया जिसका वृतान्त रासो नामक पुस्तक में लिखा हुआ है"—इन दोनों लेखों से निश्चित है कि पृथ्वीराज रासो वि० सं० १५१७ और १७३२ के बीच किसी समय बना होगा। वि०सं० १७४२ की 'पृथ्वीराज रासो' की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति मिली है। इसीलिए वि० सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् १६०० के आसपास बनना अनुमान किया जा सकता है।

श्री ओझा जी का यह कथन भी मान्य नहीं कहा जा सकता। 'रासो' में जिस चित्तौड़पति रावल समर का वर्णन है उसके नाम के स्थान पर उपनाम या उपाधि सूचक नाम विक्रम रावल, पराक्रम राजा केशरी नरेन्द्र और समर साहस (समर विक्रम) लिखे हुए मिलते हैं। रासोकार चन्द अपने काव्य का चरित्रनायक पृथ्वीराज को मानता है किन्तु साथ में चित्तौड़ पति रावल समर विक्रम के प्रति भी वही भाव प्रकट करता है×। 'रासो' के अनेक समयों में कवि ने राव समरसिंह के प्रति इसी प्रकार के आदर भाव प्रकट किये हैं। 'पृथा-विवाह' समय में भी "बर आहट्ठ नरेश समर साहस अनभंग" लिखा है, अर्थात् किसी से नष्ट न होने वाला विक्रम केशरी आता है। अतः दोनों नामावलियों में कुछ नाम उप और उपाधि सूचक प्रतीत होते हैं। रणसिंह के पिता विक्रमसिंह ही रासो के समर विक्रम हैं, जिस समरसिंह के वि० सं० १३३० से १३५८ तक के शिला-लेख उपलब्ध हैं वे समरसिंह उससे भिन्न हैं।

---

× शोध-पत्रिका भाग २ अंक ३ पृ० १६४ ले० कविराज मोहनसिंह।

डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने 'पृथ्वीराज-रासो का रचना-काल' शीर्षक एक लेख में तथा 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि राज-प्रशस्ति के रचना-काल (आरम्भ सं० १७१८ समाप्ति सं० १७३२) के समानान्तर पृथ्वीराज-रासो की भी रचना का समय है। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोटना है। अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने तीन प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। जिनका सार यही है कि उनकी दृष्टि से रासो का रचना-काल सं० १७०९ और सं० १७३२ के बीच का है।

श्री मेनारिया जी के इस कथन से प्रतीत होता है कि 'रासो' की भाषा विकृति और उसके क्षेपकों से क्षुब्ध होकर ही वे ऐसी कल्पना कर बैठे हैं। जब कि ओझा जी जैसे प्रकांड विद्वान भी 'रासो' का रचना-काल सं० १६०० के आसपास मानते हैं। इसके अतिरिक्त लघुतम रूपांतर की सं० १६६७ और ९७ की, लघु की सं० १६७० के करीब की और मध्यम की सं० १६९२ की लिखित प्रतियां प्राप्त हैं। स्वामी नरोत्तमदास जी भींडर वाली प्रति का लिपि काल सं० १५३१-३२ मानते हैं। अतः मेनारिया जी का यह मन्तव्य युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

अब विद्वानों द्वारा यह निर्विवाद मान लिया गया है कि 'पृथ्वीराजरासो' की रचनाकाल सम्बन्धी भ्रान्तियों का एकमात्र कारण प्रक्षिप्त अंशों का प्रचुर समावेश है। 'पुरातन-प्रबन्ध' संग्रह में जिसका रचना-काल सं० १२९० माना जाता है रासो के वर्णन सम्बन्धी 'रासो' की ही षट्पदियाँ उपस्थित की हैं, जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। अतः 'रासो' की रचना 'पुरातन प्रबन्ध' संग्रह के पूर्व की सिद्ध हो जाती है। जयचन्द के काल के वि०सं० १२२६

से १२४२ तक के अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध हैं जिनसे विदित होता है कि दूर २ के राजा लोग जयचन्द की सेवा में रहते थे। ताम्र-पत्रों का यह वर्णन 'रासो' में लिखे गये जयचन्द के आश्रित अनेकों राजाओं के होने की साम्यता रखता है। † इसके अतिरिक्त उदयपुर पुस्तकालय की रासो की हस्तलिखित पुष्पिका के अन्त में किसी 'कल्का' कवि द्वारा लिखित षट्पदियां मिली हैं जिसकी पहली षट्पदी श्लेष में है जिसके तीन अर्थ होते हैं १-रासो के निर्माण काल के पक्ष में २-रासो को समझने की कठिनाई के पक्ष में ३-रासो की प्रशंसा के पक्ष में। रासो के निर्माण काल के पक्ष में रासो वाला अनंद संवत् ११७२ लिखता है जिसमें वि० सं० से कमी के ९० वर्ष जोड़ने से वि० सं० १२६२ होता है। अत: 'कल्का' कवि का लिखना है कि रासो ग्रन्थ की रचना चन्द कवि और उसके पुत्रों द्वारा वि० सं० १२६४ तक हुई है। दूसरी षट्पदी में कल्ला कवि लिखता है कि चन्द द्वारा की गई रचना के पद्य बिखर गये थे उन्हें राणा अमर (अमरसिंह प्रथम) ने एकत्रित कर पुन: सुन्दर रूप दिया। ये षट्पदियां केवल चन्द और रासो ग्रन्थ की पुष्टि ही नहीं करती बल्कि रासो ग्रन्थ के निर्माण काल की भी पुष्टि करती हैं। ¶

## 'रासो' की भाषा

भाषा, भाव, अनुभूति तथा कल्पनाओं के ऐश्वर्यमयी लीला की अभिव्यक्ति का सजीव साधन है। अन्तर्लोक के वैभव का

---

† श्री गोपालसिंह राष्ट्रवर द्वारा लिखित "जयचंद वंश प्रकाश' छं० ४१-४३।

¶ 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' भाग १, पृष्ठ ६२, ले० श्री मोतीलाल मेनारिया।

मूर्तिमान चित्रपट भाषा ही है। भाषा भाव की अनुगामिनी होकर चलती है। कवि अपने भावों के अनुसार भाषा को सजा-संवार कर रूप प्रदान करता है जिसमें उसके भाषाज्ञान का पांडित्य उभरता है और उस उभार में उसकी ज्ञान गरिमा का उज्ज्वल रूप अवलोका जा सकता है। भाषा-रचना में कवि की अनुभूति का वास्तविक प्रतिबिम्ब झलकता है। जिस कवि को भाषा पर जितना अधिकार होगा उसके भाव उतनी ही प्रांजलता और सौष्ठवता लिए हुए मिलेंगे। भाषाओं का ज्ञान प्रतिभा सम्पन्न कवि के लिए अत्यावश्यक है। 'जब भाषा जन-शक्ति की निर्माणात्मक साधना में रूप विन्यास रचती है तो उसकी विकासोन्मुख सत्ता में वह वेग और बल होता है कि साहित्य के विशिष्ट भव्य-लोक में विचरण करने वाले सुलेखक भी उसके नैसर्गिक गुणों से आकृष्ट तथा उसकी सर्वग्राही लोक-प्रियता से अभिभूत होकर उसे अपनाते ही हैं, पर आखिर अपनी परम्परा-गत सुसंस्कृत वृत्ति और कलात्मक निष्ठा को और अभिजात–वर्ग की परिष्कृत रुचि को तुष्ट करने के दबाव में वे अपने पूर्व-ग्रहों से अपने को पूर्ण रूप से मुक्त भी नहीं कर पाते। इसीलिए एक ओर उस समय कुछ विशिष्ट चारण कवियों तथा जैनाचार्यों का साहित्य, जिनका सम्पर्क राजकुल से था, अपभ्रंश के रूढ़ कलागत वैभव से मंडित है और दूसरी ओर पद-यात्री साधु-संतों की वाणी, जिनका संपर्क प्रान्त प्रान्त के जन-जीवन से था, अपने सहज रूप में सरस व सशक्त है।..........समझने की बात यह

कि संक्रान्ति-काल की साहित्यिक भाषा का रूप विविध हो सकता है। जगत की गति ऋत् व सत् शक्तियों के समविषम संचरण में अविरल प्रवाहमान है और इस भांति भाषा अपना नव रूप धारण करती रही है उसमें परिवर्तन तो सतत होता ही रहता है, पर एक अनमोल क्षण आता है जब

मानस की नव चेतना में उसका नवरूप पहिचान लिया जाता है। इस समय उदारचेता मनीषी उस भाषा के सहज रूप में मानव जीवन के नये सत्यों का उद्घाटन करते हैं और सत्ताभोगी अपने पूर्व-ग्रहों से ग्रसित होते हुए भी बरबस उसे अपनाते हैं पर पूरे साज शृङ्गार के साथ। यह वैषम्य कुशल भाषा-वेत्ताओं को भी भ्रम में डालता रहा है।' †

'रासो' का रचयिता चन्द उच्च कोटि का भाषाविद् था। उसको षट्-भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था। 'रासो' इसका उज्ज्वल उदाहरण है अपने भाषा ज्ञान के सम्बन्ध में कवि स्वयं एक स्थान पर संकेत करता है—

षट् भाषा रस्स नव नट्ट नाद। जानो विवेक विच्चार वाद।

छं० १७९, स० ६७।

इस प्रकार चन्द को हम छः भाषाओं का ज्ञाता पाते हैं। 'पृथ्वीराज-विजय' के कवि जयानक ने अपने ग्रन्थ में पृथ्वीराज चौहान के समकालीन कवि के बारे में लिखा है कि 'वह कवि छः भाषाओं का जानकार था।'

अपने महाकाव्य के सम्बन्ध में कवि चन्द का कथन है कि उसमें धर्म की उक्तियाँ हैं, राजनीति और नव-रसों का वर्णन किया गया है, तथा छः भाषाओं, पुराण तथा कुराण का भी कथन किया गया है—यथा :

† सप्तकिरण की भूमिका, पृ० २७—२९, ले० श्री विष्णु अम्बालाल जोशी।

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नव रसं ।
षट् भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया ।
छं० ८३, स० १ ।

दरबारी दसौंधी ने महाराज जयचन्द के द्वार पर उपस्थित कवि चन्द का परिचय देते हुए, उसके छः भाषाओं के ज्ञाता होने का उल्लेख किया था जो इस प्रकार है—

भाषा षट् नव रस पढ़त, वर पुच्छै कविराज ।
संप्रति पंग नरिंद कै, बर दरबार बिराज ।।
भाषा परिछा भाषा छट्ट, दस रस दुम्भर भाग ।
वित्त कवित जू छंद लौं, षग सम पिंगल नाग ।।
छं० ५५५—५६, स० ६१।

इस प्रकार कवि चन्द को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची ब्रजभाषा और शौरसेनी अथवा मागधी आदि छः भाषाओं का पूर्ण ज्ञान था तथा 'विमल अमल बानी विलास, बयन बानी वर ब्रननं ।' के अनुसार 'रासो' में छः भाषाओं के साथ तत्कालीन बोलचाल की भाषा का प्रयोग भी ओज-गुण, प्रसाद-युक्त विशिष्ट शैली में विद्यमान है ।

'रासो' में जिस भापा का प्रयोग किया गया था वह अपभ्रंश स्वरूप को अपने में सजोये हुए थी । भाषा की विकृति तथा उसके शब्दों के तोड़-मरोड़ रूपों को देख कर ही अनेक विद्वानों ने उसे विभिन्न भाषा की खिचड़ी मात्र मान लिया है, जो युक्ति संगत नहीं है । हाँ, यह बात असन्दिग्ध रूप से मानी जा सकती है कि 'रासो' अपने वर्तमान रूप में एक समय की रचना नहीं है । 'रासो' अपने मूल रूप में अभी तक कहीं पर प्राप्त भी नहीं हुआ है ।

'रासो' के जो संस्करण इस समय उपलब्ध हैं वे सब चंद के पश्चात् तैयार किये गये हैं। तदपि इन संस्करणों में 'रासो' के मूल रूप के दर्शन सुगमता से किये जा सकते हैं। गाथा, छप्पय और पद्धरी आदि छन्द प्राचीनता के द्योतक हैं। विभिन्न हाथों में पड़ने के कारण इसमें विकृति आ गई है। वर्तमान काल में उपलब्ध 'रासो' की प्रतियों के अनुसार 'रासो'की भाषा डिंगल और पिंगल की समन्वयात्मक विशेषताओं को लिए हुए दृष्टिगत होती है। राजस्थान में रचित होने के कारण कुछ मान्य विद्वानों ने रासो की भाषा को पूर्णत: डिंगल राजस्थानी ही माना है। उदयपुर के कवि श्री श्यामलदास और जोधपुर के श्री मुरारीदान जी ने 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि–"इस ग्रंथ की रचना राजस्थान में हुई क्योंकि इसमें बहुत से ऐसे प्रयोग है जो राजस्थान की ही भाषा में मिलते हैं।" डॉ० श्यामसुंदरदास जी 'रासो' को पिङ्गल ही मानते हैं।

मि० ग्राउन ने सन् १८७३ ई० में रॉयल-एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित एक लेख में 'रासो' की भाषा को १६ वीं शताब्दी में प्रयुक्त होने वाली ब्रजभाषा माना है। आपने अपने इस विस्तृत लेख में 'रासो' की क्रियाओं, संज्ञाओं और विभक्तियों आदि की रूप-रेखा के आधार पर ही निर्णय दिया है।

मि. तासी के अनुसार 'रासो' की रचना कन्नौजी बोली में हुई थी। भारतीय भाषाओं के प्रकांड विद्वान डॉ० ग्रियर्सन और राजस्थानी के विशेषज्ञ डॉ० टेसीटोरी ने भी 'रासो' को पश्चिमी हिन्दी की रचना माना है।

भाषा की विकृति से क्षुब्ध होकर ही आचार्य पं० रामचन्द्र

शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास में लिखा है कि—"इस ग्रन्थ की भाषा बे-बुनियाद है। इसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों और कुछ कवित्तों की भाषा तो ठिकाने की है पर तोटक आदि छन्दों में अनुस्वरांत शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसी संस्कृत, प्राकृत काव्यों में होती है। कहीं कहीं तो भाषा आधुनिक ढांचे में ढली सी दिखाई देती है और कहीं कहीं प्राचीन साहित्यिक रूप में।"

सम्भवत: भाषा के आधुनिक प्रयोगों को देख कर ( जो प्रक्षिप्त अंश ही कहे जायेंगे ) विद्वानों ने इसे एक अर्वाचीन रचना मान लिया है, जो उचित नहीं है।

राजस्थान-भारती के भाग १ अंक १ के पृष्ठ ९३-१०३ में डॉ० दशरथ शर्मा तथा श्री मीनाराम रंगा 'रासो' की लघुतम प्रति का अनुशीलन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि "मूल 'रासो' अपभ्रंश में लिखा गया था तथा उसमें पुरानी राजस्थानी का पुट है।" इसकी पुष्टि में 'रासो' की लगभग साठ पंक्तियों का रूपांतर भी आपने अपभ्रंश में दिया है। डॉ० दशरथ शर्मा ने 'रासो' को प्राचीन राजस्थानी की रचना मानने के दो प्रमाण दिये हैं :

(१) जनश्रुति 'रासो' को राजस्थानी की रचना मानती आई है।
(१) अपभ्रंश में इसका रूपांतर सरलता से हो सकता है। *

श्री नरोत्तमदास स्वामी के द्वारा राजस्थान-भारती के इसी अंक के अपने एक निबंध 'पृथ्वीराज रासो' के पृ० ९-१० में 'रासो' की

* विशेष विवरण के लिए देखिए—राजस्थान-भारती, भाग १, अंक १, पृ० १९३-१०३ The original Prithviraj Raso—an Apabhramsa work.

भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि "राजस्थान की परम्परागत अनुश्रुति तो 'रासो' को पिङ्गल की रचना ही मानती आई है। केवल डिङ्गल से अनभिज्ञ कतिपय आधुनिक विद्वानों ने यह धारणा अवश्य फैला रखी है"।

श्री स्वामी जी के इस कथन पर सत्यांश की मोहर लगा देना उचित नहीं है। डॉ० दशरथ शर्मा जैसे विद्वानों को "केवल डिङ्गल से अनभिज्ञ कतिपय आधुनिक विद्वानों" में नहीं गिना जा सकता लेकिन जहाँ तक अनुश्रुति का संबंध है अनुश्रुति 'पृथ्वीराज-रासो' की रचना को राजस्थानी ही अधिक मानती आई है, पिङ्गल कम। यह अलग बात है कि डिङ्गल और पिङ्गल के समन्वय को केवल पिङ्गल की सरस्वती धारा का विचित्र वेग समझ कर उसे केवलमात्र पिङ्गल की ही रचना मानने लगे हों, पर यह अनुश्रुति के साथ न्याय नहीं होगा और न ही इस प्रकार अनुश्रुति का गला दबाया जा सकता है।

श्री स्वामीजी के इस कथन से हम पूर्णतया सहमत हैं कि "वर्तमान काल के विद्वानों ने डिङ्गल और पिङ्गल के वास्तविक भेद से अपरिचित होने के कारण पिङ्गल की अनेक रचनाओं को भी डिङ्गल ही समझ लिया और ऐसी व्यवस्था भी दे डाली। इन विद्वानों ने न तो डिङ्गल की रचनाओं को ही देखा, न पिङ्गल की रचनाओं का ही अध्ययन किया और डिंगल क्या है इससे अपरिचित होने के कारण इन पिङ्गल रचनाओं को डिङ्गल कह डाला केवल इसलिए कि इनकी रचना राजस्थान में हुई। यह बात पृथ्वीराज-रासो के साथ भी हुई।"

डिङ्गल और पिङ्गल के वास्तविक भेद को समझे बिना यदि कतिपय विद्वानों ने ऐसा मान भी लिया है तो यह अपनी २ समझ का फेर

ही कहा जायेगा। पर 'पृथ्वीराज-रासो' के साथ भी यही बात हुई, ऐसा मानना युक्ति संगत नहीं होगा। चंद केवल पिंगल या डिंगल का ही ज्ञाता नहीं था अपितु उस काल की प्रमुख साहित्यिक और लोक-भाषा का भी प्रकांड विद्वान था। कोई आश्चर्य नहीं कि भाषाओं के इन महत्त्वपूर्ण रूपों को स्वीकार कर कवि ने उस पर अपनी मौलिक प्रतिभा का रंग चढ़ा दिया हो।

ऊपर श्री मुनि जिनविजय जी द्वारा उद्धृत जैन-प्रबन्ध से जो उद्धरण दिये जा चुके हैं वे अपभ्रंश के ही हैं। सम्भव है 'रासो' अपने वास्तविक रूप में अपभ्रंश का ही काव्य रहा हो। स्वयं स्वामी जी भी जैन प्रबन्धों में उपलब्ध उदाहरणों के आधार पर 'रासो' की रचना अपभ्रंश में ही हुई थी मानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'रासो' का वास्तविक रूप अपभ्रंश ही को माना है। आपका कथन है कि "पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह के प्रकाशन के बाद से यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई है कि चन्द का मूल काव्य बहुत कुछ अपभ्रंश की प्रकृति का था और आज वह जिस रूप में मिलता है वह उसका अत्यन्त विकृत-सा है।" तथा एक अन्य स्थल पर आप लिखते हैं कि "सौभाग्यवश 'रासो' के चार छन्द अपभ्रंश रूप में प्राप्त हो गये हैं जिनसे मूल 'रासो' की भाषा का अन्दाज लग जाता है। तत्कालीन साहित्यिक भाषा के जो भी उदाहरण मिल जाते हैं उन्हें देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह में सुरक्षित छप्पयों की भाषा के आसपास ही मूल रासो की भाषा रही होगी।" ‡ साथ ही आप यह भी मानते हैं कि "चन्द हिंदी परम्परा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रंश परम्परा के अंतिम कवि थे।"

‡ हिन्दी साहित्य का आदि-काल, पृ० ४२, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

डा० मुंशीराम शर्मा ने ठीक ही कहा है कि 'पृथ्वीराज-रासो अपभ्रंश-युग के समीप की ही रचना है उसका लेखक चन्द वरदायी 'तनयश्चन्द्रराजस्य चन्द्रराजऽत्राभवत्' में आया हुआ चन्द्रराज ही है जो पृथ्वीराज का समकालीन उसका कवि और उसका सामन्त है। वह विभिन्न कवियों के हाथों में पड़कर अपने मूल रूप से दूर जा पड़ा है।"§

अपभ्रंश के रोला, उल्लाला, वीर, कव्व,छप्पय और कुंडलियां दूहा आदि अपने प्रमुख छन्द हैं जो 'रासो' में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त चन्द ने "संस्कृत और प्राकृत श्लोक लिखने का भी प्रयास किया है। संस्कृत वे साटक या श्लोक छन्द में लिखते हैं और प्राकृत गाहा (गाथा) में। इन दोनों बातों को देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि अपभ्रंश वे दूहा और छप्पय में लिखते होंगे। छप्पय आगे चल कर डिंगल का प्रधान छन्द हो गया है।¶

वस्तुतः चन्द ने प्राचीन शब्दों को ओजस्विता का कवच पहिनाने के लिए उनमें खूब तोड़ मरोड़ की है। पद्मावती समय के ही इन शब्दों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है:

(१) नारिकेल फल परठि दुज (सं० द्विज)
(२) जादू कुलह अभग्ग (सं० अभग्न)
(३) अपछरा गीत गावत (सं० अप्सरा)
(४) सुक समीप मन कुंवरि को (सं० कुंअरि)

इसके साथ ही शल्ल (सं० शल्य) केवाण (सं० कृपाण) मेछ

§साहित्य संदेश, भाग १२ अंक, ७ जनवरी १९५१, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता, ले० श्री मुंशीराम शर्मा।

¶ हिंदी साहित्य का आदि काल, पृ० ९९, ले० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

( सं० म्लेच्छ ) आदि शब्दों का विकृतरूप मिलता है। इसी प्रकार 'रासो' की भाषा में क्रियाओं के रूप कहीं पश्चिमी हिंदी तथा कहीं संस्कृत और प्राकृत से मिलते हैं। अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का ही द्योतक है। 'फिरंगी कती पाम सुकलात लालं' में 'सुकलात' शब्द अरबी का है। 'सिंगनी सुसद्द गुनि चढ़ी जंजीर' में 'सिंगिन' शब्द डिंगल का है तथा 'नारिकेल फल परठि दुज' में भी परठि शब्द डिंगल के परीठ का परिचायक ही है।

अपभ्रंशकालीन भाषा के रूप भी 'रासो' में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। यथा मज्जाद, ग्रंधव्व, कंद्रप्प, सायर, परुह, साद आदि। कारक विभक्तियों के रूपों में भी 'ह' चिह्न लगा हुआ है। जैसे दिम्सह, दुज्जह, फुलह, वीरह, बांसह, और भ्रुमण्डह आदि। पिंगल भाषा के रूप 'मनहुं कला सपमान कला सोलह सो बन्निय' तथा 'मन अति भयो हुलास विगसे जनु कोक किरन रवि' शब्द मिलते हैं। परंतु इन छंदों में प्रयुक्त शब्द बन्निय, पिन्निय, अप्प, भुल्ल, इक्क, छप्पति, पुच्छत और दिष्षय आदि अपभ्रंश के अधिक निकट हैं। इस प्रकार 'रासो' की भाषा अपने कलेवर में विभिन्न शब्दों की कुंतावली से सज्जित है।

फिर भी, 'रासो' की भाषा कवि के कथनानुसार 'षट् भाषा पुरान च कुरान कथितं मया' की विविधताओं के समन्वय से संबंध रखती है। 'रासो' में इन सभी भाषाओं के शब्दों का कवि ने स्वतंत्रतापूर्वक अपना लिया है। 'रासो' की भाषा कवि की मौलिक अभिव्यक्ति का ज्वलंत उदाहरण हैं। चंद कहीं२ पर शब्दों के आविष्कारक भी बन गये हैं। 'रासो' में प्रयुक्त छंदों में दोहा, पद्धरी, कुंडलियाँ, भुजङ्गप्रयात, आर्या, अरिल्ल, साटक, कवित्त

आदि के सुंदर प्रयोग हैं। वीर-रस की उदात्त अभिव्यक्ति के साथ अन्य रसों की मनोहर विभूतियाँ भी कवि ने प्रदान की हैं। कवि का वर्णन-कौशल वीर-रस के उद्बोधन हेतु सेना और युद्ध-वर्णन में, शृङ्गार रस का चित्रण नव नव विवाहों, विलास और सौन्दर्य में, अद्भुत रस का शक्ति के वर्णन में तथा हास्य रस का दरबारियों के मनोहर मनोरंजन में निखरा है। 'रासो' की विभिन्न आकृतियों के अनुसार भाषा के अनुपम रूप को कवि ने गढ़ा है। कवि का यह अपना निर्माण कौतुक ही कहा जा सकता है। कोमल और स्निग्ध भाषा के साथ ओजपूर्ण अभिव्यंजना की भाषा में कवि ने जम कर लेखनी को गति दी है। उनकी गति में अलंकारों की शोभा अपनी निराली ज्योत्स्ना छिटकाए हुए है जिनमें अत्युक्ति और अतिशयोक्ति का वर्णन तो कीर्ति के वर्णनों में है ही, पर साथ ही अनुप्रास उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, यमक और प्रतीक का प्रयोग सर्वत्र मिल जाता है। कवि की भाषा अपने सभी गुणों में कीर्ति की जयमाला पहिने कौस्तुभ मणियों की आभा को सजोये हुए है जिसका आलोक काव्य में निर्मल भाव उर्म्मियों के संगम पर विकीर्ण हुआ है।

अतः 'रासो' की भाषा के सहज रूप-विन्यास में जो विविध शैलियों का सौष्ठव झलका पड़ता है उसके वर्तमान विकृत रूप को देख कर ही 'रासो' को सत्तरहवीं व अठारहवीं शताब्दी का ग्रन्थ मान लेना एकांगी वृत्ति का उदाहरण है। 'रासो' की भाषा बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के सन्धिकाल की साहित्यिक और लौकिक भाषा के स्वरूप-सौष्ठव का गुण-गौरव धारण किए हुए है जिसमें मानव-जीवन की नव-चेतना के सत्यों का उद्घाटन हुआ है। वैसे 'रासो' के उपलब्ध विविध रूपान्तरों के आधार पर यह कह सकना कि 'रासो एक विशिष्ट युग की रचना है,' कठिन सा जरूर है।

## 'पृथ्वीराज रासो' का महाकाव्यत्व

भारतीय समीक्षा-पद्धति में श्रव्य-काव्य के दो भेद माने गये हैं एक प्रबन्ध दूसरा मुक्तक। प्रबन्ध में कथा-सूत्र गठित रहता है उनमें पूर्वपर तारतम्य रहता है। मुक्तक स्वतन्त्र और बंधन मुक्त होते हैं, वे स्वतः पूर्ण हैं। एक-एक छन्द अपना विशिष्ट रूप विधान लिए रहते हैं। प्रबन्ध-काव्य के 'महाकाव्य', 'काव्य' और 'खण्ड-काव्य' ये तीन भेद माने गये हैं। 'महाकाव्य' में जीवन की अनेक-रूपता दिखाने वाली सृष्टि अंकित होती है। 'काव्य' महाकाव्य को प्रणाली पर लिखा जाने पर भी उसमें सम्पूर्ण लक्षणों का उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार के कथा-निरूपक सर्ग-बद्ध काव्यों को 'एकार्थ-काव्य' कहा गया है। 'खण्ड-काव्य' में जीवन की एक घटना को मुख्यता दी जाती है, विस्तार घट जाता है, पर गहनता बढ़ जाती है।

'महाकाव्य' में नायक की श्रेष्ठता, इतिहास-प्रसिद्धि, युद्ध-यात्रादि के वर्णनों के साथ ही जातीय-गुणों, जातीय-जीवन तथा जातीय-मनोवृत्तियों का प्राधान्य रहता है। जाति, समाज और राष्ट्र चेतना के पुंजीभूत कणों से निर्मित नायक का चरित्र जीवन की विविध क्रीड़ा-कौतुक की अठखेलियों में अनुरत हो मानव-जीवन की उदात्त अनुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति का चित्र लेकर महाकाव्य का प्रधान विषय बन जाता है। वस्तुतः "महाकाव्य वह विषय-प्रधान काव्य है जिसमें कि अपेक्षाकृत बड़े-आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।" ×

पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार 'महाकाव्य' को ऐपिक (Epic)

---

× काव्य के रूप, पृ. ९४, ले० बाबू गुलाबराय।

कहा गया है। काव्य के दो मूल विभाग किये गये है-एक विषयी प्रधान और दूसरा विषय प्रधान। विषयी-प्रधान काव्य को प्रगीत-काव्य कहा गया है और विषय-प्रधान का ऐपिक से तादात्म्य किया गया है।

'अरस्तू' का कथन है कि महाकाव्य एक लंबी कथा है, जो अनेक कथाओं से पोषित हो, उसमें छन्द परिवर्त्तन और दृश्य-परिवर्त्तन हो सकता है। यह महाकाव्य या तो दुखःपूर्ण कथानक लिए हो अथवा एक चरित्रवान नायक का चित्रण। अरस्तू ने 'महाकाव्य' और 'दुःखान्तकी' के भेद-निरूपण करते हुए कहा है कि दुःखान्तकी वस्तुकार्य से तथा महाकाव्य छन्द से अनुकरण है इसलिए इसका परिणाम दो रूपों में दिखाई देता है, एक तो महाकाव्य में घटनाओं की विशदता तथा उपकथाओं की महत्ता बढ़ जाती है और दूसरी ओर अद्भुत तत्व का योग स्वतंत्रता-पूर्वक अधिक किया जा सकता हैं। वे कहते हैं:-

'क्योंकि महाकाव्य में 'कार्य' हमारे नेत्रों के सम्मुख नहीं रहता, गो दुःखान्तकी अद्भुत-तत्व लिए होना चाहिए, लेकिन महाकाव्य में असंभाव्य के लिए अधिक स्थान है जो अद्भुत-तत्व के संगठन में बहुत मात्रा में योग देता है।' □

'ऐडिसन' के अनुसर "अगर गाथा (Fable) केवल संभाव्य है, वह सत् इतिहास से तनिक भी विभिन्न नहीं; अगर वह केवल अद्भुत है, वह 'रोमान्स' से अधिक अच्छी नहीं है। वीर-काव्य का, इसीलिए, ऐसी परिस्थितियों के नियोजन करने में ही महत् रहस्य निहित है जो पाठक में एक ही समय विश्वास तथा

□ "Tregedies should have an element of marvel, but in Epic there is more room for improbability which forms so large an element in the marvellous, because the action is not before our eyes".

आश्चर्य—दोनों भावनाएँ संचार कर सके। सु-चयन की हुई गाथा में वस्तुतः घटित वस्तुओं या कम-से-कम मनुष्य-वर्ग की अनुभूत धारणाओं के अनुरूप होने वाली घटनाओं के वर्णन द्वारा ही ऐसा प्रभाव उत्पन्न होना संभव है।≡ एक अन्य स्थान पर वे यह विचार धारा भी प्रकट करते हैं: "सर्वश्रेष्ठ समालोचकों के मतानुसार वीर-काव्य सुखद अंत लेकर ही समाप्त होना चाहिए और वस्तु की गति में अनेक भय तथा आशंका, दुःख तथा अशांति के क्षुब्ध वातावरण में संचरण करने के बाद पाठक का मन तोष तथा शांति की स्थिति में लीन हो जाना चाहिए।×

फ्रेंच आलोचक 'लवस्सु' के अनुसार महाकाव्य प्राचीन घटनाओं को चित्रित करने के लिए एक पद्य-बद्ध रूपक है। उसके विचार में होमर इस बात को भली भांति समझता था कि ग्रीस की रियासतों का पारस्परिक कलह जनता की हित की दृष्टि से अहित-कर है। अतएव, सर्व-साधारण को शिक्षा देने के लिए ही उसने 'इलियड' में ट्राय के युद्ध की कल्पना की।

---

≡ "If the fable is only probable, it differs nothing from a true history; if it is only marvellous, it is no better than a romance. The great secret therefore of heroic poetry is to relate such circumstances, as may produce in the reader at the same time both belief and astonishment. This is brought to pass in a well chosen fable, by the account of such things as have really happened, or at least of such things as have happened according to the received opinions of mankind".

× An 'Heroick Poem' according to the opinion of the best critics, ought to end happily and have the mind of the reader, after having conducted it through many doubts and fears, sorrows and disquietudes, in a state of tranquility and satisfaction."

आलोचक 'डेवनांट' के मतानुसार महाकाव्य की आधार-भूत घटनायें प्राचीन ही होनी चाहिए, क्योंकि अर्वाचीन घटनाओं की अपेक्षा प्राचीन घटनाओं के चित्रण में कवि कल्पना की ऊंची उड़ान ले सकता है। इसके अतिरिक्त उसे इस प्रकार की घटनाओं के चित्रण में अपेक्षाकृत स्वतंत्रता भी रहती है।

आठवीं शताब्दी के भारतीय आचार्य दंडी ने 'महाकाव्य' के लक्षणों की विवेचना 'काव्यादर्श' में करते हुए महाकाव्य में ऐतिहासिक सर्ग-बद्ध कथानक, धीरोदात्त गुणशील नायक का चरित्र-चित्रण, एक प्रधान रस की पुष्टि, विभिन्न नगर, पर्वतों आदि प्राकृतिक दृश्यों से अलंकृत और लोक-रंजन की भावनाओं का होना प्राधान्य माना है। ‡

बारहवीं शताब्दी के आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने अपने 'काव्यानुशासनम्' में महाकाव्य में सर्ग के पर्य्याय क्रमशः आश्वास, सन्धि और अवस्कन्ध का उल्लेख किया और मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ये पांच सन्धियाँ जो अभी तक पूर्ववर्त्तियों द्वारा केवल नाटक में ही अपेक्षित बतलाई गई थीं, उन्होंने महाकाव्य में आवश्यक बतलाई तथा साथ ही संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंष और ग्राम्य भाषाओं के महाकाव्यों का भी उल्लेख किया। ¶

कविराज विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों को दृष्टि में रखते हुए 'महाकाव्य' के निम्न लक्षण 'साहित्य

---

‡ 'काव्यादर्श' श्लोक १४ से १९,

¶ 'पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्ध भिन्नान्त्यवृत्त सर्गाश्वाससंध्यवस्कन्धकबन्धं सत्सन्धि शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम् ।' ८, ६ ।

दर्पण' में 'निरूपित किये हैं महाकाव्य के ये लक्षण सर्वांग रूप से स्वीकृत किये गये हैं :-

सर्गबन्धो महाकाव्यम् तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।१।
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृङ्गार वीरशान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते: ।।२।
अङ्गानि सर्वेतिरसाः सर्वे नाटक सन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तम् अन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।।३।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।४।
क्वाचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तम् ।
एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।।५।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिकइह ।
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।।६।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तावासराः ।।७।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलतुर्वन सागराः ।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः ।।८।
रणप्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।।९।
कवेवृत्तस्य वा नाम्ना नायक स्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।।१०।

अर्थात् -

(१) महाकाव्य में सर्गों का निबन्धन होता है ।

(२) इसका नायक देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से समन्वित कोई सद्वंशी क्षत्रिय होता है ।

एक वंश के सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं।

(३) शृंङ्गार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य रस गौण होते हैं।

(४) नाटक की सब सधियों रहती हैं।

(५) कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी होती है।

(६) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इनमें (चतुर्वर्ग) से एक उसका फल होता है।

(७) प्रारम्भ में आर्शीवाद, नमस्कार या वर्ण्य-वस्तु का निर्देश होता है।

(८) खलों की निंदा और सज्जनों का गुणानुवाद रहता है।

(९) इसमें न बहुत छोटे और न बहुत बडे आठ से अधिक सर्ग होते हैं।

(१०) इन सर्गों में प्रत्येक में एक ही छन्द होता है किन्तु सर्ग का अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं।

(११) सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए।

(१२) इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, ध्वान्त, बासर, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, अध्वर, रण, प्रयाण, उपयम् मंत्र, पुत्र, और उदर आदि का यथा सम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए।

(१३) इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्रनायक के नाम से होना चाहिए।

(१४) सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है।

वस्तुत: पाश्चात्य और पौर्वात्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों में विशेष अन्तर नहीं है। तदपि पौर्वात्य आचार्य जातीय भावनाओं के साथ-साथ युद्ध, यात्रा, ऋतु-वर्णन और विशिष्ठ रस योजना को प्रधान प्रश्रय देते हैं।

महाकाव्य के इन लक्षणों को दृष्टि में रखते हुए 'पृथ्वीराज रासो' को कसौटी पर कसते हैं तो प्रतीत होता है कि निर्दिष्ट लक्षण अधिकांश रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। 'रासो' में नायक पृथ्वीराज के जीवन की विविध घटनाओं का सांगोपांग चित्र प्रस्तुत किया गया है। उस युग की ऐतिहासिक, राजनैतिक और सामाजिक विकास परम्पराओं में गठित, जीवन की मार्मिक उद्भावना तथा जातीय चेतना की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति रासोकार द्वारा अनुपम ढंग से हुई है।

(१) सर्गों या अध्यायों की दृष्टि से 'रासो' में आठ से कहीं अधिक सर्ग अथवा समय है। 'समय' शब्द सर्ग का ही पर्याय है। 'रासो' में सब मिलकर ६९ समय हैं। प्रक्षिप्त अंशों के निकाल देने पर सर्गों या समयों में कमी होना सम्भव है। फिर भी ये समय कथा के सूत्र में आबद्ध हैं। किन्हीं 'समयों' को निकाल देने पर भी मूलकथा की शृंखला में कोई अंतर नहीं आ पाता। ये विविध समय 'पृथ्वीराज' (नायक) के जीवन की विविध घटनावलियों को सजोये हुए हैं। 'समयों' की विवधताओं को स्वीकार करते हुए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने उचित ही कहा है–"इस क्रमबद्ध जंजीर को तैयार करने मे लम्बी, छोटी, सुडौल, बेडौल, अनेक हाथों से गढ़ी हुई पृथक्-पृथक कड़ियों का उपयोग किया गया है जो एक दूसरे के साथ बाद को जोड़ दी गई हैं। ऐसा होने पर भी यह जंजीर असाधारण ही है।"‡

‡ काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १७८

(२) 'रासो' का नायक पृथ्वीराज चौहान धीरोदात्त नायक है। वह धीरता, वीरता और उदारता आदि अनेक गुणों से विभूषित हैं। वह 'शस्त्र-शास्त्र पारंगत', 'बज्रंग बाहु अरि दल मलन', 'अवतार अजित दानव मनुस', 'तेजे सूर समं ससि अमि गुनं' तथा 'ध्रुअ समान संभरि धनिअ' आदि विशिष्ठ सद्गुणों से अलकृंत हैं।

(३) 'रासो' का प्रधान रस वीर है। 'रासों' के ४८ समय युद्ध के भीषण अट्टाहासों से गुंजरित, रण साज-सज्जा से सुशोभित, अस्त्र-शस्त्रों के प्रहारों से प्रकम्पित तथा शत्रु दर्प चूर्ण विजयोल्लास से मुखरित हैं। कवि ने इन युद्धों का बड़ी चतुरता से स्वाभाविक एवं सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया है। जो कवि की रचना-सौष्ठव का ज्वलंत प्रमाण है। ये स्थल वीर-रस की पुष्ठि के प्रधान सहायक हैं। वीर-रस के साथ ही उत्साह और क्रोध के भावों को भी उचित स्थान मिला है। वीर-रस का प्रधान अवयव होकर शृङ्गार अपने रूप वैभव की सौन्दर्य-रश्मियों को लेकर चमका है। रतिभाव की व्यंजना ने 'रासो' में शृङ्गाररस की निराली छटा छिटका दी है। नायिकाओं के नख-शिख वर्णन, संभोग और विप्रलम्भ में शृङ्गार की परिपूर्णता विद्यमान है। वीर-रस अपने प्रधान सहायकों भयानक, रौद्र तथा वीभत्स को लेकर उपस्थित है। इसके अतिरिक्त अन्य रसों का गौण रूप में, पर सुन्दर वर्णन 'रासों' में उपलब्ध होता है।

(४) 'रासो' में पृथ्वीराज का यशोगान ही काव्य का मुख्य उद्देश्य था। इतिवृतात्मक महाकाव्य होने के कारण नाटक की जिन संधियों का महाकाव्य में रहना हेमचन्द्र ने आवश्यक ठहराया था, 'रासो' के अनेक 'समयों' और प्रस्तावों में उनका उचित निरूपण किया गया है। 'प्रति मुख-सन्धि,' 'निर्वहण-सन्धि,' 'गर्भ-सन्धि'

'अवमर्श-सन्धि' आदि के साथ 'उपक्षेप,' 'परिक्रिया,' 'युक्ति,' 'समाधान', 'संकेट,' 'प्ररोचना,' 'द्युति,' और विरोचन' आदि भी मिलते हैं।

(५) 'रासो' की कथा ऐतिहासिक चरित्र नायक का उद्घाटन तो करती ही है साथ ही पृथ्वीराज के लोक प्रसिद्धि की सूचना भी देती है। १२ वीं शताब्दी के दिल्ली और अजमेर के शासक, ऐतिहासिक वीर पुरुष महाराज पृथ्वीराज चौहान तृतीय की जीवन गाथा के रूप में 'रासो' की कथा ऐतिहासिक तत्वों के साथ ही कल्पनाओं के गगन-चुम्बी उड़ानों से सज्जित है। पृथ्वीराज के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक नर-पुंगवों का उल्लेख रासोकार द्वारा हुआ है जिनमें भीमदेव चालुक्य, जयचन्द गाहड़वाल, परमाल चंदेल और शहाबुद्दीन गोरी आदि मुख्य हैं।

(६) मंगलाचरण के बाद 'रासो' में धर्म, कर्म और मोक्ष की स्तुति की गई है। धर्म के आधारभूत तत्वों पर कर्म का पवित्र विधान रचते हुए मोक्ष प्राप्ति की निष्ठा 'रासो' में एक विशेष प्रयोजन को लिए हुए है। स्वामीधर्म की रक्षा हित, जातीय चेतना को ज्योतिर्मय रखने के हेतु उत्तम वीरकर्म करते हुए मोक्ष प्राप्ति का विधान 'रासो' में पूर्ण रूप से हुआ है। 'रासो' की समाप्ति में उसका महात्म्य कथन करते हुए रासोकार ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उल्लेख भी किया है।+

(७) 'रासो' में प्रारम्भ ही में आर्शीवाद, नमस्कार और वर्ण्य-वस्तु का निर्देश किया गया है। मंगलाचरण में कवि ने विष्णु, ब्रह्मा और महेश की स्तुति की है। धर्म, कर्म और मुक्ति की स्तुति करने के उपरान्त पूर्व कवियों की स्तुति करते हुए अपने काव्य को उनका

+ पावहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम।
निरमान मोष पावहि सु धाम॥ छं० २३२, स० ६७

उच्छिष्ट कहा है। दुर्जनों का स्वभाव वर्णन करके कवि ने सरस्वती की वंदना की है। इसके उपरान्त गणपति के जन्म आदि की कथा कह कर कवि ने भगवान महादेव की स्तुति करके हरि और हर के द्वन्द को मिटाने के हेतु उनके समन्वय का वर्णन किया है। इन स्तुतियों के बाद कवि ने वर्ण्य-वस्तु का निर्देश किया है।=

(८) 'रासो' में सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निंदा का भी यत्र तत्र विधेय हैं। 'रासो' के प्रारम्भिक प्रस्ताव में कवि ने पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति की है। सज्जनों की गुण-ग्राहकता को स्वीकार किया गया है तथा दुर्जनों के उपहास और निंदा-कथन की ओर संकेत है। अपने काव्य के संबंध में लिखते हुए कवि ने कहा है कि "विधि और विनान (विज्ञान) का सर्वस्व छिद्रान्वेषक कुमति दुर्जन को नहीं आ सकता परन्तु जो विशुद्ध गुणों वाले सज्जन बृन्द हैं उनको इसका वर्णन और रस सरसित होता है।"‡

(९) आचार्यों ने महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्गों का निदान किया है। 'रासो' में ६९ समय या प्रस्ताव हैं। जहाँ तक छोटे और बड़े समय या प्रस्तावों का प्रश्न है, छोटे प्रस्तावों में 'रासो' के चौथे समय में ३१ छन्द १६ वें में १८ तथा ५६ वें में १२ छन्द हैं। बड़े प्रस्तावों में सबसे अधिक छन्द ६१ वें समय में २५५३ छन्द हैं। शेष में ४९४ से कम छन्द नहीं हैं। महाकाव्य का सर्ग सम्बन्धी नियम 'रासो' में अत्यन्त शिथिल कहा जा सकता है।

(१०) 'रासो' में एक ही समय (सर्ग) में एक छन्द के अतिरिक्त विविध छन्दों के दर्शन होते हैं। रासोकार ने अनेक छन्दों

---

= स १, छ० १, ११, ४१, ५०, ५२, ५३, ५४-६७, ९६।

‡ कुमति मति दरसत तिहिं। विधि विनान अब्बांन॥
तिहिं रासौ जु पवित्र गुन। सरलौ बुन्न रसान॥छं.८९ स.१

का उपयोग प्रत्येक समय में किया है। संभव है 'महाभारत' के विविध पर्वों में विविध छन्दों की योजना को देखकर रासोकार ने अपने ग्रन्थ में भी इसी प्रकार छन्दों की विविध योजना का सफलता पूवक निर्वाह किया हो।

(११) 'रासो' में पृथ्वीराज के जीवन के विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख आदि से अंत तक क्रमानुसार हुआ है। प्रत्येक 'समय' के अन्त में आगामी कथा की सूचना का संकेत उपलब्ध है। कथा की एक सूचना में जहाँ जहाँ पर शिथिलता परिलक्षित होती है वह क्षेपककारों की कृपा का ही फल कहा जा सकता है। अतः प्रारम्भ से अन्त तक घटनाओं का प्रवाह एक सूत्रता लिए हुए है। रासोकार ने अपनी प्रतिभा से कथा की प्रणाली में अपूर्व चातुर्य का समावेश कर विविधता में एकत्व का मनोहर संयुजन कर प्रवाह को अपूर्व गति-वक्रता प्रदान की है।

(१२) 'रासो' में प्रकृति की विविध लीला-क्रीड़ाओं का मनो-मुग्धकारी वर्णन मिलता है। प्रकृति-वर्णन के अनेक पक्षों का कवि के द्वारा स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण हुआ है। 'संध्या'[१] का वर्णन युद्ध-काल के अन्तर्गत किया गया है। इसी प्रकार सूर्य,[२] चन्द्र,[३] रात्रि,[४] प्रदोष,[५] ध्वान्त,[६] ( अन्धकार ) वासर,[७] ( दिन ),

१. स० ५, छं० ७९, स० २७, छं० १०७, स० २५ छं० ४९५।

२. स० ३६, छं० २३६, स० ३८, छं० ३०, ३२, स० ४४ छं० १९८।

३. स० ३६, छं० २३७, स० ३८, छं० ७।

४. स० २५, छं० ६७५, स० ६१ छं० ८३२-३४।

५. स० ६१ स० २७३, ८२४, ८२९।

६. स० २५, छं० ६७७-७८।

७. स० २७, छं० ५७, स० ३२, छं० १०८।

प्रात: काल,[८] मध्यान्ह,[९] मृगया,[१०] पर्वत,[११] ऋतु-वर्णन,[१२] वन,[१३] सागर[१४] सम्भोग,[१५] विप्रलम्भ,[१६] मुनि,[१७] नगर,[१८] अध्वर[१९] (यज्ञ), रण,[२०] प्रयाण,[२१] ( यात्रा ) उपयम[२२] ( विवाह ), मंत्र,[२३] पुत्र,[२४] उदय‡, आदि का

---

८. स० २७, छं० ५८, स० ४४, छं० १५७, स० ६१ छं० २९९-३०० ।

९. स० २५, छं० ५९२, स० २७, छं ७२, स० ६१, छं० १७३३ ।

१०. स० १७, छं० १३ १४, स० २५ छं० ५२-६७ ।

११. स० ६७ छं० ९६-१०३ ।

१२. ऋतु वर्णन के अन्तर्गत षट् ऋतु-बारह मास का वर्णन रासो के विविध समयों में बहुत ही सुन्दर हुआ है। जिनमें, वर्षा, शरद, ग्रीष्म, हेमन्त, शिशिर का रोचक वर्णन है जो कवि के प्रकृति-ज्ञान और वर्णन कौशल का परिचायक है।

१३. स० ६, छं० १२-१६ ।

१४. स० २, छं० ९२, स० ४२, छं० ५०, ५३ ।

१५. स० २५, छं० ३५४ ।

१६. स० ६१, छं० १२६५ ।

१७. स० १, छं० ५६०-६७, स० ६, छं० १८, स० ६३, छं० १५४ ।

१८. स० ५९, छं० ५-१०, २३-२६ ।

१९. स० ४८, छं० २२८, स० ४९, छं० २४-२५ ।

२०. स० ३७, छं० ७९, ८०, ११८ ।

२१. स० १४, छं० १८, स० ४३, छं० ४०-४३ । स० २५, छं० ५१-५२ ।

२२. स० २५, छं० २६८ ।

२३. स० ६, छं २६, ३०, ३१, स० ५८, छं० १०८ ।

२४. स० १, छं० ६८४-८९, ६९३-९६, २५ स० ६७ छं० ५६५

‡ स० ६७ छं० ५६५

सांगोपांग वर्णन द्रष्टव्य है। वर्णन-विस्तार के साथ ही इनकी संश्लिष्ट योजना भी उल्लेखनीय है।

(१३) चंद ने अपने काव्य का नामकरण अपने चरित्रनायक 'पृथ्वीराज' के नाम से ही रखा है जिसमें आद्योपान्त पृथ्वीराज का चरित्र वर्णित है।

(१४) 'रासो' के सम्पूर्ण 'समयों' अथवा 'प्रस्तावों' के नाम और उनमें वर्णित विविध प्रसंगों का उल्लेख सर्ग की वर्णनीय कथा से ही सर्ग का नामकरण संस्कार किया गया है।

इस प्रकार महाकाव्यत्व के मान्य तत्वों की कसौटी पर कसने पर रासो का महाकाव्यत्व सिद्ध हो जाता है। इसमें केवल मात्र सर्गों का निबन्धन कुछ शिथिलता लिए हुए हैं तथा सर्ग भी अत्यधिक मात्रा में है। यह किंचित त्रुटि 'रासो' को महाकाव्यत्व के आसन से डिगा नहीं सकती। शेष महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण 'रासो' में विद्यमान हैं। अतः 'पृथ्वीराज-रासो' लक्षण-ग्रन्थों के नियमानुसार प्रबन्ध महाकाव्य की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है।

'पृथ्वीराज रासो' को बाबू गुलाबरायजी ने स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य' ( epic of growth ) माना है।§ प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल ने 'रासो' को सांगोपांग सफल एवं सिद्ध महाकाव्य बताया है। $ पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने इसे महाकाव्य ही माना है। डा० श्यामसुन्दरदास ने अपने हिन्दी-साहित्य में इसे महाकाव्य न कहकर 'विशालकाय वीर-काव्य' कहना ही उचित ठहराया है, जिसके प्रमाण स्वरूप आपने तीन प्रधान तर्क उपस्थित किये हैं। इन तर्कों के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि 'रासो' में प्रक्षिप्त अंशों की प्रचुरता है, तथा

---

§ सिद्धान्त और अध्ययन भाग २ पृ० १५८

$ साहित्य जिज्ञासा, पृ० १२७।

एक समय या सर्ग में अनेक छन्दों का होना विशेष आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता जबकि साहित्य दर्पणकार भी इसे स्वीकार कर लेते हैं। 'रासो' में पृथ्वीराज जैसे हिन्दू सम्राट को अपने काव्य का चरित्रनायक मानकर तात्कालीन परिस्थितयों का तो चित्रण किया ही गया है, परन्तु साथ ही भविष्य के प्रति भी रासोकार का स्पष्ट संकेत है। अतएव बाबू साहेब के तर्कों में विशेष बल नहीं है। केवल मात्र 'वीर-काव्य' तो उसी अवस्था में माना जा सकता है जबकि उसमें वीर-रस का ही परिपाक छलका पड़ता हो तथा अन्य रस अपनी सात्विक क्रियाओं को लेकर विद्यमान न रहे। परन्तु 'रासो' में वीर-रस के अतिरिक्त विविध क्रीड़ाओं के भिन्न २ कौतुक विभिन्न समयों में उपलब्ध हुए हैं जिनके कारण सहज ही अन्य रसों का उद्दीप्त होना संभव हुआ है। अतएव सभी दृष्टिथों से विचार करने पर 'रासो को महा-काव्य ही कहना उचित होगा।

## 'पृथ्वीराज रासो' का काव्य-सौष्ठव–

काव्य के दो पक्ष होते है–भाव-पक्ष और कला-पक्ष। "भाव-पक्ष में काव्य के समस्त वर्ण्य-विषय आ जाते हैं और कला-पक्ष में वर्णन शैली के सब अंग सम्मिलित हैं। ये दोनों पक्ष एक दूसरे के सहायक और पूरक होते हैं। भाव-पक्ष का संबंध काव्य की वस्तु से है और कला-पक्ष का सम्बन्ध आकार या शैली से है। वस्तु और आकार एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते। कोई वस्तु आकारहीन नहीं हो सकती है और न आकार वस्तु से अलग किया जा सकता है। वैसे तो व्यापक दृष्टि से भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही रस से सम्बन्धित हैं, क्योंकि कला-पक्ष के अन्तर्गत जो अलङ्कार, लक्षण, व्यञ्जना और रीतियाँ हैं वे सभी रस की पोषक हैं तदपि भाव-पक्ष का रस से सीधा सम्बन्ध है। वह उसका प्रधान अङ्ग

है, कला-पक्ष के विषय में उसके सहायक और पोषक हैं।[1]

'पृथ्वीराज रासो' में भाव-पक्ष की अनूठी अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'रासो' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से 'रासो' एक युगान्तकारी रचना है। 'रासो' में भावों का का जितना सुन्दर, मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन हुआ है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। कवि ने 'वस्तु-वर्णन' के अन्तर्गत अनुभावों की जो अनुपम लड़ी बांधी है वह उनकी भावाभिव्यंजना शक्ति का सफल परिचायक है। 'रासो' में व्यूह-वर्णन, नगर-वर्णन, विवाह-वर्णन, उत्सव-वर्णन, पनघट-वर्णन, नख-शिख-वर्णन, शृंगार-वर्णन, षट्-ऋतु और बारहमासा-वर्णन तथा युद्ध-वर्णन आदि का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। ये 'वर्णन' मानव-हृदय की रागात्मक मनोवृत्ति का सफल एवं सुन्दर रूप-विधान की रचना को लिए हुए है। विभिन्न स्थायी भावों की प्रेरक शक्ति की रसात्मकता का पूर्ण परिचय इनकी एक विशिष्टता है। रासोकार ने विविध चमत्कारिक रूपकों की वृद्धि में विविध रीतियों के द्वारा अपनी अनुभूति को सजीवता प्रदान की है।

प्रधानतः 'रासो' युद्ध प्रधान काव्य है। क्षत्रीय वीरों के युद्धोत्साह तथा उनकी वीरता जो ओजस्विता का बाना पहिने हुए है, ज्वलन्त उदाहरण 'रासो' में विद्यमान है। उस युग के क्षत्रीय वीर स्वामी धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। युद्ध-भूमि में वीरगति पाना लौकिक कीर्ति तो था ही, पर साथ ही स्वर्ग प्राप्ति की कामना भी उसका एक विशेष रूप था। एक वीर की भावना का यह कथन कितना स्वाभाविक है:—

> **मरना जाना हक्क है, जुग्ग रहेगी गल्हाँ।**
> **सा पुरसा रा जीवनां, थोड़ाई है भल्लाँ॥**

---

[1] 'सिद्धान्त और अध्ययन', पृ० ११५ बाबू गुलाबराय।

उन वीर नर पुंगवों को अपनी वीरता-शौर्य पर सच्चा आत्माभिमान था। वे अपनी भुजाओं से हाथी ठेल सकते थे, पर्वत मसल सकते थे, तलवार से शत्रुओं को खंड-खंड कर सकते थे तथा रण को अपने मस्तक से सुशोभित कर सकते थेः—

**हम ठिल्लें हत्थी भुजन, घल्लें अद्रि न वत्थ।**
**खंडे इक्क बन खग्गबल, मंड़े रण बिच मत्थ॥**

ऐसे नर-पुरुषों के युद्ध-भूमि में सच्चे सहचर भी तीन ही होते हैं–हृदय, तलवार और हाथ।

**कंथा रिण में जायनैं, कीजै किण रो साथ।**
**साथी थारे तीनि हैं, हियो, कटारी, हाथ॥**

ऐसे वीर जब युद्ध-भूमि में वीर-गति प्राप्त करते हैं और चारण उनके कीर्त्तिगान को तलवारों की झंकार के साथ, नगाड़ों की तुमुल थाप पर गाने लगते हैं तब किसी वीर-पत्नि का यह कथन उस वीर के शौर्य-पराक्रम पर चार चाँद लगा देता है; जब वह चारण की ओर उन्मुख होकर कहती हैः—

**तन तलवाँरा तिलछियो, तिल तिल ऊपर सीव।**
**आला घावाँ ऊठसी, छिन इक ठहर नकीब॥**

'रासो' में ऐसे वीर-रत्नों का चारित्र तलवारों की तीक्ष्ण धार पर उभर कर सामने आया है। 'पृथ्वीराज चौहान' जब युद्ध के लिए कटिबद्ध होता है तो कवि उसके असाधारण रूप का वर्णन करता हुआ कहता हैः—

**उट्ठि राज प्रथिराज बाग, मनौ लग्ग वीर नट।**
**कढ़त तेग मन बेग, लगत मनौं बीजु भट्ट घट॥**

युद्ध के भीषण दौर में वीरों का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा को पहुँचता है। वीरों का रण-कौशल देखने को गगन-मंडल में सूर्य भी थके से रह जाते हैं और वीरों का हृदय रक्त की लालिमा में उछाल भरने लगता है:—

थकि रहे सूर्य कौतुक गगन, रगन मगन भई सोन धर।
हवि हरसि वीर जग्गे हुलसि, हुरेउ रंग नव रक्त वर॥

ऐसे महा भयानक युद्ध में रण-भूमि की शोभा को व्यक्त करने में चंद की लेखनी जम कर चली है:—

धर उप्पर भर परत करत अति युद्ध महा भर।
कहौं कमध, अरु गध्ध, कहौं करि चख अन्तरुरि॥
कहौ दंत मंत है षुर षुपरि, कुम्भ भ्रसुण्डहि रूंड सब।
हिन्दुवांन रांव भय भांन, मुष गहौं तेग चहुंवान पब॥

कवि की ये उक्तियां आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों के संयोग से वीर-रस की निष्पत्ति करती हुई अपनी वीरोपम भंगिमा के द्वारा दूसरों के हृदय पर जो अमिट प्रभाव डालती है, उसका प्रभावोत्पादक-वर्णन एक स्थल पर चित्र लिखित सा हुआ है:—

हयग्गयं सजे भरं, निसांन बज्जि दूभरं।
नफेरि वीर बज्जई, मृदंग झल्लरी गई।
सुनंत ईस रज्जई, तनीस राग सज्जई।
सुभेरि भुंकयं घनं, श्रवन्नल फुट्टि झंझनं।
उषाह मध्य ते चले, सग्गुन्न बंदि जे भले।
ससूर सूरयं कलं, दिनं सु अठमी चलं।

महाराज पृथ्वीराज और उनके आदर्श वीर सामंतों की आदर्श वीरता का वर्णन कवि ने तत्कालीन परम्परा के अनुसार ही किया

है। 'रासो' में स्त्रियों पर वार न करने, घायलों और पीठ दिखाने वालों को नहीं मारने के नियम का पूर्णतः पालन हुआ है। वीरों के अनुपम आदर्श-चरित्र की जो प्रधान विशेषता रही है कि शरण में आये हुए शत्रु को भी प्राण-दान दे देना, 'रासो' इसका उज्जवल प्रमाण है। गौरी जैसे प्रबल शत्रु को भी जो अनेकों बार तिरस्कृत होकर भी बार-बार आक्रमण करने में नहीं चूकता था, पृथ्वीराज से वीर और उदार व्यक्ति की ही विशेषता थी जो हर बार उसे क्षमा कर दिया करते थे।

युद्ध-काल के सभी प्रसंगों में कवि की कुशल अभिव्यक्ति दर्शनीय है। युद्ध के अन्तर्गत वीभत्स का प्रसंग रस की अभिवृद्धि कराने में प्रधान सहायक होता है। समर-भूमि में भयंकर वेश-भूषा धारण की हुई योगिनी, शाकिनी, डाकिनी, भूत. प्रेत, पिशाच आदि के नृत्य-गान भय की प्रतीति कराता है। योगिनियों के रूधिर पान, गीद्धों की चिल्लाहट और भैरव का तांडव-नृत्य युद्धकाल की विभिषिका का उत्पन्न करता है। इन दृश्यों में कवि का स्वाभाविक वीभत्स चित्र उल्लखित हुआ है।

पत्र भरें जुग्गिनि रूधिर, गिध्धिय मंस इकारि।
नच्यौ ईस उमया सहित, रूण्ड़माल गल धारि।।

'रासो' के 'नवम् समय' में युद्ध-वर्णन का दृश्य श्लाघनीय है;—

घन घाइ-घाइ अघ्घाइ सूर; सिधू औ राग बज्जं करूर।
हुंकार हक्क जोगिनिय उक्क; मुह मार मार बज्जं बरक्क।
नाचतं नद्द नारद्द तुबं; अच्छरी अच्छनद जानि लुंब।
गिद्धिनी सिद्ध बेताल फाल; षेचर षयाल कूदं कराल।

इस प्रकार वीर-रस उपमा प्रधान रूप में तथा रौद्र और वीभत्स के अन्तर्गत हुआ है। इसके अतिरिक्त युद्ध-वर्णन के

अन्तर्गत सेना, अस्त्र-शस्त्रों, हाथियों और घोड़ों की साज-सज्जा व रूप वैभव का वर्णन सजीव ओज-गुण-प्रधान शैली में हुआ है। चंद में युद्ध-वर्णन की जो प्रधान विशेषता है। वह है छन्दों के अनुकूल चयन में। कवित्त, छप्पय, कुंडलियां आदि छन्दों में भावों का वेग है तथा पद्धरी, नाराच, बिज्जुमाली आदि में वर्णन की तीव्रता अपने उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का द्योतक है।

अतएव 'रासो' में कवि ने प्रभावोत्पादिनी ओजपूर्ण शैली में युद्ध का विस्तत सजीव चित्र युद्ध-भूमि, सेना, अस्त्र-शस्त्र और हाथी-घोड़ों के वर्णन में अनुपम किए हैं। इन वर्णनों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति से यह सिद्ध है कि कवि चन्द कलम और तलवार दोनों में दक्ष था। इन वर्णनों में प्रभावशीलता, चमत्कारिक उक्तियां और प्रेरक गुणों की संजीवनी विद्यमान है।

भयानक-रस का परिपाक ढुण्ढा दानव के प्रसंग में हुआ है। ऋषि द्वारा पृथ्वीराज को अन्धे कर दिये जाने के श्राप में भी भयानक-रस की अवतारणा हुई है।

हास्य-रस के स्थल 'रासो' में कम ही स्थलों पर उपलब्ध होते हैं। उनमें भी व्यंग और मुक्त हास्य का पुट अनुपम अट्टहास की ध्वनि को निनादित करने में क्षम्य है। ऐसे स्थल विशेषकर कान्य-कुब्जेश्वर के दरबार में राजा जयचन्द और कवि चन्द के प्रश्नोत्तरों के रूप में उद्भूत हुए हैं।

आश्चर्यजनक घटनाओं के चित्र तो 'रासो' में अनेक स्थलों पर खोजे जा सकते हैं। कवि ने इनका इतना स्वाभाविक वर्णन किया है कि ये घटनायें सत्य स्वरूप प्रतीत होती हैं।

वीर-रस प्रधान 'रासो' में शृङ्गारिक उद्भावनायें उसका एक विशिष्ठ पक्ष है। वीर प्रायः रति-प्रेमी होते ही हैं। वह वीर ही

क्या जो रमणी-सौन्दर्य को आकर्षित करने और उसके भ्रू-निक्षेप को अपने श्वांसों के सरगम पर सज्जित करने के लिए उसे हस्त गत करने को अपने बाहु-बल का परिचय न दे ? वीर-गाथा काव्यों में ऐसी रति-परक कल्पनाओं का प्रधान स्थान रहा है। 'रासो' भी इसका अपवाद कहा जा सकता है। तलवारों की झंकारों के साथ कामनी के नूपुरों की रुन-झुन अपनी संमोहिनी ध्वनि को बिखेरने में अपने रूप-गुण-यौवन की विशिष्ठता लिए रहती है। श्रृङ्गार-रस के अन्तर्गत सम्भोग और विप्रलम्भ के मन-भावने-सुहावने तथा करुण-भावों की प्रचुरता रहती है। नायिका भेद और नख-शिख वर्णन के साथ ही रति-क्रीड़ा-कौतुक भी श्रृङ्गार के सहायक होकर किये जाते हैं।

'रासो' में पृथ्वीराज के अनेक विवाहों के प्रसंग हैं जिनमें इन्छिनी-विवाह, शशिव्रता-विवाह, संयोगिता स्वयंवर तथा पद्मावती-विवाह आदि में कवि की श्रृङ्गारिक उद्भावनाओं की अभिव्यक्ति सरस, मनोरम एवं भाव युक्त सुन्दरतम् है। 'पद्मावती' के रूप-सौन्दर्य की कमनीय-कांति का रासोकार ने बड़ा मनोहर वर्णन किया है जिसमें अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग सौन्दर्य-राशि को द्विगुणित करने में पूर्णतः सफल है :

मनहुं कला ससभांन कला सोलह सौं बन्निय।<br>
बाल वेस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय ॥<br>
कुट्टिल केस सुदेस पौह परिचियत पिक्क सद।<br>
कमल गंध वय संध हंस गति चलइ मंद मद ॥<br>
विगसि कमल स्त्रिग भ्रमर वेनु षंजन स्त्रिग लुट्टिय।<br>
हीर कीर अरु बिम्ब मोती नष सिष अहि घुट्टिय ॥

पद्मावती की श्रृङ्गारिक चेष्टाओं के सूक्ष्म वर्णन में कवि की कोमल कान्त पदावली का आभास मिलता है। निराश और

आकुल हृदय पद्‌मावती जब शुक के द्वारा पृथ्वीराज के आगमन का समाचार पाती है तो आनन्द-विभोर होकर अपनी शृङ्गारिक साज सज्जा में जुट जाती है–अपने प्रियतम को रिझाने, अपने प्रेमी की ग्रीवा का गलहार बनने। मानवीय-भावों की अभि-व्यक्ति का सजीव चित्र है —:

दिष्षन्त पंथ दिल्ली दिसांन, सुख भयो सुक जब मिल्यो आन।
संदेश सुनत आनन्द नैन, उमगीयं बाल मनमथ्थ सेन।
तब चिकट चीर डार्‌यो उतार, मज्जन मयंक नव सत सिंगार।
भूषन मंगाय नष सिष अनूप, सजि सेन मनौं मनमथ्थ भूप।
सो ब्रम्ह थार मोतिन भराय, झलहल करंत दीपक जराय।
संगय सषिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय जेम लज्जत मराल।

'रासो' के नवम प्रस्ताव के 'रावर समरही राजा प्रथीराज-विजय' समय में मालव-नरेश भीम की कन्या इन्द्रावती का वयः संधि और नख-शिख वर्णन में कवि की सूक्ष्म दृष्टि और सौंदर्य-विश्लेषण की अपूर्व व्यञ्जना है। रीतिकालीन कवियों का शृंगारिक-वर्णन इसके आगे तुच्छ लगता है:—

अहि संधि संसव याल, जनु अरक राका हाल।
संसव जु सूर-समान, वय चंद चढ़न प्रमान।

× × × ×

बिय बाल जोबन सेव, ज्यों दंपती हथलेव।
वैसंधि संषिय चिंद, ज्यों मत्त जुरहि गुविंद।
तुछ रोम राज बिसाल, मनो अग्गि उग्गिय बाल।
कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनो काम फूल अंकूर।
वय रूप ओपम एह, जा बनक नृप कर देह।

इसी प्रकार कवि ने इन्द्रावती के सोलह श्रृंगार का वर्णन भी अपूर्व सुन्दरता से किया है। इच्छिनी, शशिव्रता आदि के नख-शिख और वय: संधि वर्णन में कवि की विचित्र सूझ-बूझ मौलिक उद्भावना शक्ति के सहारे व्यक्त हुई है। 'रेवातट समय' में "रितराज रू जोबन राजत वोर, चंप्यौ ससिरं उर सैसव कोर" के उक्ति वैचित्र्य के द्वारा कवि ने यौवन की उपमा बसन्त से तथा शिशिर की शैशव से देकर रूपक द्वारा वयः संधि अवस्था का दिग्दर्शन कराया है। लगता है विद्यापति के वय: संधि कालीन पदों में भी रासोकार का यही प्रभाव लक्षित होता है जहाँ वह इसी प्रकार रूपक के सहारे नायिका की अवस्था का चित्रण करता है।

अतएव कविवर चंद का श्रृंगार वर्णन बड़ा ही अनूठा, कमनीय-कान्ति की श्री को छिटकता हुआ, सौन्दर्य की मादक सुरभि बिखेरता है। रूप के इस मनोहर उपवन में नयन-मधुकरों को तृप्त करने वाला, दामिनी-दामन में दमकते देह का उज्जवल रूप ज्योत्सना की विमल मुस्कराहट को उभारता, भावुक-हृदय को इन विविध क्रीड़ाओं का कौतुक-केन्द्र बनाता है। कवि की प्रतिभा ने वीर-रस की जैसी ओजपूर्ण उद्भावनायें व्यक्त की हैं वैसा ही रस सौन्दर्यमयी तारिकाओं को श्रृंगार-रस के शुभ्र नभ-गंगा में अवगाहन कराने का भी रहा है। विप्रलम्भ-श्रृंगार के वर्णन इतने प्रभावोत्पादक और वेदना की करूण-कलित रागिनी का स्वर छेड़ने वाले नहीं हैं, तो भी 'रासो' में अनेक स्थलों पर विप्रलम्भ के छलकते हुए अश्रु-बिन्दुओं को देखा जा सकता है। द्वितीय-समय में कृष्णावतार के प्रकरण में बांसुरी की मोहक ध्वनि पर गोपियों की आकुलता का वर्णन है। देवगिरी-समय में पति-वियोगा पत्नि का विरह-वर्णन करूण-भावों का सजीव चित्र

उपस्थित करता है। विरह-वर्णन में नायिका की मनोगत भाव-र्म्मियों के कोलाहल का गर्जन-तर्जन बा लूका तट पर सिसक कर उो जाता है। कवि-हृदय वियोग को प्रेम की कसौटी मानता है जिस पर प्रेमिका के स्नेही-हृदय की परख होती है। आंसुओं की खारी बूंदों के ज्वार में जब वियोगिन का आकुल हृदय उमड़-घुमड़ कर बाहर आने को छटपटाने लगता है, तब उसकी वेदना साकार होकर गीत के रूप में फूट पड़ती है, सांसों की सिसकती हुई वीणा के तारों पर मुखर उठते हैं उसके मानस के बोल:—

हूँ तो मरूं हूँ पिया अेकली जी
ढोला, हूँ मरूं कटारी—हूँ मरूं कटारी खाय
अब घर आयजा फूल गुलाब रा हो जी !!

वियोग में प्रकृति का उदात्त-पक्ष विरहणी के हृदय के लिए कष्टकारक बन जाता है। विशेषकर सावण और शिशर पक्ष में वियोगजन्य वेदना चरम सीमा पर पहुँच जाती है। कातरता वश पशु-पक्षी तक को वह कोसने लगती है। 'रासो' में कुछ स्थलों पर वियोगिन-नारी के हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है:—

बढ़ि बाल वियोग सिंगार छुप्यौ,
सुख कौ अभिराम कि काम लुप्यौ।
नव चंदन अंग अनंग जरै,
दिप दीपक भौन में भान बरै।
चली सीत सुगंध सुमंदय बात, मनो लगि पावक अंगन जात।
भुअंगम भोजनं अगंम नारि, करै करुना को उन हारी।
सबै मुसखी मिलि पूछत ताहि, मनो जड़ श्रोत सुनै रस जाहि।

इन वर्णनों के साथ ही मानव-भावनाओं के विकास का चित्रण करने में कवि ने प्रकृति-वर्णन बड़े ही सुन्दर और स्वाभाविक किये

हैं। कवि के प्रकृति-वर्णन व्यापक और प्रभावोत्पादक हैं। प्रकृति को मानव की अधिष्ठात्री देवी कहा जा सकता है। प्रकृति का सचेतन सौन्दर्य मानव-हृदय की उदात्त अनुभूतियों का संवेदन-शील प्रेरक रूप बनता है। प्रकृति के रम्य-लोक में विचरण करके कवि मानव-मन के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और जीवन के मार्मिक अनुभावों का सफल चित्रण भी। चंद ने प्रकृति का सांगोपांग वर्णन कहीं २ पर बड़ा अनूठा और सजीव किया है। पच्चीसवें समय में वर्षा-वर्णन का यह छन्द प्रकृति के एक विशेष पक्ष का, उसके रूप-वैभव का संकेत तो करता ही है साथ ही संयोग और वियोग की अवस्थाओं के उद्दीपन का कार्य भी:—

घन घटा वधि नभ मेघ छाय, दामिनिय दमकि जामिनिय जाय।
बोलंत मोर गिरबर सुहाय, चातिग्ग रटत चिहुँ ओर नाय।
दादुरन सोर दस दिसि डराय, रह पंथ पथिक थकि पाय साय।
बिरहिनी दूर जिन पंथ नाह, तिन बुंद लगत जनु ईष जाह।
दंपति करैं क्रीला उमंग, मनमथ्य रहसि बढ़ि अंग-अंग।
बिरहिनी रटत पप्पोह नार, प्रफुलित्त लता लल्लरिय बार।
उंभरिय चलिय सलिता संपूर, चलि मिलिय संग सायरह नूर।

इसी प्रकार विभाव के अन्तर्गत शरद का वर्णन भी चन्द्रिका की लहराती हुई ज्योत्सना में प्रकृति की धवल आभा की अपूर्वता लिए हुए है:—

नृम्मलिय कला उग्गयो सोम, कंवप प्रकट उद्दित्त व्योम।
सरिता सुनीर आए निवान, पंगु रन हरैं त्रिय द्रग लजान।
मल्लिका फूल सुग्गंध बाय, संजोगी कंत रहि लप्पटाय।
फल-फूल सकल लूटत अंब, जस प्रभा सुम्भ सुनि राज ब्यंब।

## अलंकार और छन्द योजना —

काव्य में अलङ्कारों का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने में सहायक होते हैं। अलङ्कारों का स्वाभाविक प्रयोग जहां काव्य की श्री शोभा को द्विगुणित करते हैं वहां उनको प्रधान मानकर काव्य रचना करने पर उसका रूप विकृत हो जाता है और काव्य की आत्मा में अस्वाभाविकता झलकने लगती है। अनुभूति का वेग आडम्बर के प्रवाह में रूद्ध हो जाता है। चंद के काव्य में अलङ्कार अपनी स्वाभाविक गति से चले हैं। उनमें भावों को उद्दीप्त करने की क्षमता हैं तथा वे काव्य-सौन्दर्य का उपकरण बनकर आये हैं जिनमें अर्थ-गौरव की गरिमा का स्वरूप चमत्कारिक आभा से मंडित है।

'रासो' में अनुप्रास और यमक की बाहुल्यता है। यथा:

(१) चढ़ि कंध कमंधन जोगिनी। सद्द मद्द उनमद्द फिरि॥
(२) त्रैनंनं त्रिजटेव सीस त्रितयं त्रैरूप त्रैसूलयं।
(३) सारंग रूकि सारंग हने। सारंग करनि करछिष॥
(४) धवल वृषभ चढ़ि धवल। धवल बंधे सु ब्रह्मवसि॥
(५) भंवर भवहि भुल्लहि स्वभाव।

कवि चंद काव्य-शास्त्र का प्रकांड़ पंड़ित था। 'रासो' में काव्य-शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया गया है। अनुप्रास और यमक के साथ ही उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, संदेह, अतिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति, दृष्टान्त, प्रतीप, दीपक, अर्थान्तरन्यास और स्वभावोक्ति के निरूपण अनेक स्थलों पर उपलब्ध हो जाते हैं। निम्नांकित इस पद में अनुप्रास और श्लेष का वर्णन दर्शनीय है:-

मधुरिप मधुरित मधुर मुष संमत मधु गोप,
मधुरित मधुर महिल सुख मधुरित नयन सओप ।

उत्प्रेक्षा का यह पद भी सौन्दर्य की मनमोहक छटा को छिटकाने वाला है:—

करि शृंगार अलि अलिन संग रिमझिम झुण्डन मंझ,
बसन रंग नव रंग रंगे, जानु कि फुल्लिय संझ ।

उत्प्रेक्षाओं की राशियाँ 'रासो' में बिखरी पड़ी हैं। वस्तुत्त्प्रेक्षा का यह मनोहर छन्द उपमानों के बन्ध खोलने वाला है:—

छुटि ऋगमद कै काम छुटि । छुटि सुगंध की बास ।।
तुंग मनौ दो तन दियौ । कंचन षंभ प्रकास ।।

काव्य चमत्कार की दृष्टि से रूपक का यह रूप-वर्णन भी स्वरूपवान ही है:—

रूप नद्दि कटाच्छ कूल तट्यो भायं तरंगं बरं,
हाव भावति मीन ग्रासित गुनं सिद्धं मनं भंजनी,
सोयं जांग तरंग रूपति वरं त्रीक्लोय नाता समा,
सोयं साहि सहाबदीन ग्रहियं आनंग क्रीड़ा रंस ।

भ्रमालङ्कार में कवि ने पृथ्वीराज की भ्रान्ति का सुन्दर चित्रण किया है जब उन्होंने कन्नौज में गंगातट पर मछलियाँ चुनाते समय संयोगवश जयचंद के प्रासाद के गवाक्ष पर अनुपम सुन्दरी राजकुमारी संयोगिता का दर्शन किया:—

कुंजर उप्पर सिंह । सिंह उप्पर दोय पब्बय ।।
पब्बय उप्पर भ्रंग । भ्रंग उप्पर ससि सुम्भय ।।
ससि उप्पर इक कीर । कीर उप्पर मृग दिट्ठौ ।।

अग उप्पर कोवडं । संघ कंद्रप्प वयट्टी ॥
अहि मयूर महि उप्परह । हीर सरिसं हेम न जर्यौ ॥
सुर भुअने छंडि कवि चंद कहि । तिहि धोवं राजन परयौ ॥

काव्य-रूप-सरिता के कोमल कटाक्ष के मनोहरकूल और अनुभूतियों की लहरियाँ किन भावुक-सहृदय रसिकों को अवगाहन करने का आमन्त्रण नहीं देती ! सांगरूपक में उद्भावनाओं का यह पद 'रासो' के महत्व का संकेत करता है:—

काव्य समुद्र कवि चन्द कृत, मुगति समप्पन ज्ञान ।
राजनीति बोहिक सुफलं, पार उतारन यान ॥

इस प्रकार 'रासो' में अलङ्कारों का प्रयोग 'अलङ्करोतीति अलङ्कार' के अनुसार काव्य की शोभा-श्री को बढ़ाने वाले के रूप में हुए हैं। रस और अलङ्कार की सफल योजना ने 'रासो' के अधिकांश अंशों को मनोहर, प्रभावशाली, मार्मिक और अनुपम बना दिया है। अलङ्कारों की अलंकृत वेश-भूषा में 'रासो' का रूप निखर कर सौन्दर्यमय हो गया है।

× × ×

छन्दों को संस्कृत और प्राकृत दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। संस्कृत ( Refind ) कोटि के छन्दों में वर्ण-गणना प्रधान होती है तथा प्राकृत ( Popular ) में मात्रा-गणना। वैदिक छन्दों में वर्ण विचारों की प्रधानता है और संस्कृत-छन्दों में वर्ण विचार तथा मात्रिक-विचार भी सन्निहित हैं। वर्ण-वृत्तों की अपेक्षा मात्रा-वृत्तों में कवि अधिक स्वतन्त्र होता है। कवि की प्रतिभा और मौलिकता छन्द चयन में विषय के अनुकूल, रस और अलंकारों का उचित योग करके विकसित होती है। वर्णन को दृष्टि में रख कर ही छन्द का चुनाव किया जाता है। प्रत्येक छन्द

हर प्राकर के वर्णन के अनुकूल नहीं होता। प्रबंध-काव्य में वीर-रस की सृष्टि करने वाले छन्दों में छप्पय की उपयोगिता प्रधान है। 'दोहा' शृङ्गार की सूक्ष्म भावाभिव्यंजना, नीति और उपदेश देने की क्षमता रखता है। इसी प्रकार विभिन्न छन्द अपनी अपनी प्रमुख वाणी में अपने भावों को व्यक्त करने में कुशलता लिए हुए रहते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' में छन्दों का रूप वैचित्र्य विचित्र-भंगिमा की वक्र रेखाओं की सीमा में आबद्ध भी हैं और उद्दण्ड भी। इन छन्दों का वर्गीकरण सहज नहीं है। डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने अपनी पुस्तक 'चंदवरदाई और उनका काव्य' में छन्दों की संख्या लगभग अढ़सठ प्रकार की मानी है जो इस प्रकार हैं-मात्रा-वृत्त--गाहा, आर्या, दूहा, पद्धरी, अरिल्ल, हनुफाल, चौपाई, बाधा, बिअष्षरी, मुरिल्ल, काव्य, वेलि मुरिल्ल, रासा, रोला, अर्धमालती, मालती, दुमिला, ऊधो, उधोर, चन्द्रायना, गीता-मालती. सोरठा, करषा, माधुय, निसांणी, बेलीद्रुम, दंडमाली, कमंध, दुर्गम, लीलावती, त्रिभंगी और फारक या पारक। संयुक्त-वृत्त--बथुआ, कवित्त, कबित्त विधान जाति, वस्तु वंध रूपक, तारक या कुण्डलियाँ। वर्ण-वृत्त—सारक, दंडक, भुजंग प्रयात, भुजंगी, वेलि भुजंग, मोतीराम, बिराज, श्लोक, त्रोटक, लघु-त्रोटक, विज्जुमाला, मलया, रसवला, नाराच, वृद्ध नाराच, अर्द्ध नाराच, लघु नाराच, चावर नाराच, युक्त, वृद्ध भ्रमरावली, कलाकल या मधुराकल, कंठ शोभा, कंठाभूषन, पारस, मोदक, मालिनी, मुकुंद डामर और दोधक।

वस्तुतः रासो में प्रयुक्त छन्द अधिकांशतया प्राकृत और अप-भ्रंशयुगांन हैं। रासोकार ने इन छन्दों का चुनाव पांडित्य पूर्ण किया है जिनसे कथानक की गति में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न

नहीं होने पाती। "कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला 'रासो' का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट था।"

## 'रासो' की ऐतिहासिकता--प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता का विवाद

कुछ समय पूर्व 'पृथ्वीराज रासो' ऐतिहासिक और महाकाव्य दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जाता था, परन्तु वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों, शिलालेख और ताम्रपत्रादि प्राप्य साधनों के आधार पर ऐतिहासिक विद्वानों ने यह सिंह-गर्जना की कि पृथ्वीराज रासो ऐतिहासिक तिथियों, नामों, तथा घटनाओं से साम्य न रखने के कारण अप्रामाणिक, जाली तथा भट्टभणन्त रचना है। यह सिंह-गर्जना साहित्य के क्षेत्र में एक विप्लवकारी सिद्ध हुई। 'रासो' के प्रेमी विद्वत-मण्डली के लिए यह गर्जना एक खुली चुनौती थी, जिसको उन्होने प्रामाणिक की मेघ-दुंदुभी के साथ स्वीकार किया। 'रासो' विद्वानों की मर्मभेदी अन्वेशक दृष्टि से आँका जाने लगा और भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर पाठकों के सामने आये। फलस्वरूप एक पक्ष 'रासो' को प्रबल रूप से प्रामाणिक तथा अन्य पक्ष अप्रामाणिक मानने लगा।

'रासो' के विशाल रस-सरोवर में अवगाहन करने वाले विद्वानों को काव्यानंद की उपलब्धि हुई और वे काव्य की कसौटी पर 'रासो' का एक ऐतिहासिक मूल्य भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से मानने लगे। परन्तु विरोधी पक्ष इस ऊहापोह में एकांगी दृष्टि से ही रासो को परखकर खीज उठा, जिनके मस्तिष्क में इतिहास की घटनाओं तथा भाषा के विवृत रूप के अतिरिक्त कोई

अन्य सर्वांगीण रूप नहीं प्रवेश पा सका था। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि साहित्य का आलोचक अपने को यदि थोथा द्रष्टा मात्र मानकर ही कुछ कहेगा, तो उसके कथन में सार-तत्व की आशा करना व्यर्थ है। काव्य-रचना के स्थूल रूप को ही यदि वह अपनी बौद्धिक शक्ति द्वारा ऊहापोह करने में केवल दोष-निर्दोष मात्र ही करता रहेगा तो उसका यह कार्य सिर धुनने के समान ही होगा। रचना के अन्तरतम् सौंदर्य तक पहुँचना उसके लिए दुर्लभ ही होगा। बँधी लकीरों के सहारे किया हुआ अध्ययन एवं आलोचना का माप-दंड निम्न धरातल को ही स्पर्श कर सकेगा। अध्ययन में रचना की लम्बाई-चौड़ाई का उतना महत्व नहीं है जितना महत्व होता है उसके निष्ठापूर्ण गहन मनन, चिंतन तथा आत्म-नियोजन का। "कवि की कृति में जीवन का सत्य प्रच्छन्न भी रहता है और रहस्यमय भी, घन से छाये चन्द्र की तरह। बस उस चन्द्र के दर्शन तथा उसकी चन्द्रिका से छक कर उसको सब ओर सबके हित छिटकाना ही आलोचक का धर्म है कि वह सहज रूप से आस्वाद्य होजाय। जैसे कवि विश्वामित्र है, वैसे ही उसका आलोचक भी। कवि जगत से अपनी ओर है, आलोचक अपने से जगत की ओर। कवि जो मंगलघट जगत से भरकर लाता है, उसके अमृत-बिन्दु को वह जन-जीवन पर बिखेर दे ऐसी उसकी चेष्टा होती है। उसे समझना साधना की बात है। आलोचक को उसके लिए तपना पड़ता है। +

लगता है 'रासो' के कतिपय-आलोचकों ने काव्य के मंगल घट में समाये हुए अमृत-बिन्दु तक पहुँचने की चेष्टा ही नहीं की, उनका प्रयत्न तो घट के आकार-प्रकार, वाह्य वैभव-विलास तथा

---

+ 'सप्तकिरण' की भूमिका पृ० ७ ले० श्री विष्णु अम्बालाल जोशी।

रूप-वैचित्र्य तक ही सीमित रहा। परन्तु वर्तमान शोध ने विद्वानों को इस संकुचित दायरे से खदेड़ने का साहस किया है और अब अप्रामाणिकता का गर्जन शून्य से टकराकर विलीन होता जा रहा है।

'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानने वाले सर्व प्रथम विद्वान इतिहासज्ञ कविराज श्री श्यामलदास थे। जोधपुर के कविराज श्री मुरारीदान ने उनके कथन का समर्थन किया। आपके मतानुसार 'रासो' पृथ्वीराज के कई सौ वर्ष बाद लिखा गया था तथा इसका रचयिता कोई चारण या भाट रहा होगा, जिसने स्वजाति और चौहानों के गौरव का गान करने के लिए ग्रन्थ की रचना की। परन्तु इन कविराजों के कथन को जातिगत विद्वेष से उद्‌भूत कहकर इन पर विशेष ध्यान नहीं विया गया।

बंगाल की रॉयल ऐशियाटिक-सोसाइटी ने 'रासो' को महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ मानकर उसका सम्पादन व प्रकाशन कार्य प्रारम्भ किया। परन्तु यह कार्य शीघ्र ही स्थगित कर दिया गया। इस कार्य स्थगन के प्रधान कारण डा० बूलर थे। डा० बूलर सन् १८७५ में संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर गये हुए थे, वहाँ पर उनको 'पृथ्वीराज-विजय' महाकाव्य की एक अपूर्ण और खंडित प्राचीन प्रति कवि जयानक द्वारा रचित प्राप्त हुई। 'पृथ्वीराज-विजय' का अध्ययन करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उक्त महाकाव्य का रचयिता पृथ्वीराज का समका-लीन और राजकवि था। उसमें लिखित चौहानों का वृतान्त तथा वंशावली भी प्राप्त शिला लेखों से मिल जातीथी। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की घटनाऐं तथा उसकी वंशावली आदि 'पृथ्वीराज-विजय' के विपरीत पड़ती थीं। इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक घट-

नाओं का 'रासो' में वैषम्य पाकर तथा 'पृथ्वीराज-विजय' में उनका साम्य देखकर, इन सब बातों पर विचार करके डा० बूलर ने 'रासो' को अप्रामाणिक माना और रॉयल-ऐशियाटिक सोसाइटी के संचालकों को एक पत्र लिखकर 'रासो' का प्रकाशन बंद करवा दिया गया। पश्चात् श्री मुन्शी देवीप्रसाद ने नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका (भाग ५ पृ० १७०, १९०१) के अपने एक लेख में 'रासो' को ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रामाणिक और जाली सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पृथ्वीराज के बहुत पीछे चंद या किसी दूसरे कवि ने चंद के नाम से अटकल पच्चू इतिहास की भरती करके यह काव्य रचा है। 'रासो' में इतिहास विषय तो कुछ भी उपयोगी नहीं है। हाँ, काव्य अति उत्तम है और वीर-रस से परिपूर्ण है। इस प्रकार मुन्शीजी ने 'रासो' के काव्य पक्ष को तो स्वीकार कर लिया परन्तु ऐतिहासिक रूप को स्वीकार करने में वे असमर्थ रहे।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए पं० मोहनलाल विष्णुलाल पड्या ने दो संरक्षायें प्रकाशित की। श्री० पंड्या ने नागरी-प्रचारिणी-सभा से 'रासो' का एक संस्करण प्रकाशित करवाया जिसकी टिप्पणियों आदि में भी 'रासो' को प्रामाणिक सिद्ध किया गया। डा० श्यामसुन्दरदास तथा मिश्र बन्धुओं ने श्री पंड्या के पक्ष का समर्थन किया। प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी 'रासो' की प्राचीनता के ही समर्थक हैं। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास' नामक पुस्तक में 'रासो' की प्रामाणिकता में विश्वास व्यक्त किया है।

इस प्रकार 'रासो' की प्रामाणिकता के संबंध में दो पक्ष बन गये।

राजपूताने के प्रकांड इतिहासज्ञ विद्वान महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अनेक पुष्ट प्रमाणों द्वारा 'रासो' को जाली ग्रन्थ सिद्ध किया। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास में 'रासो' को अप्रामाणिक माना और श्री ओझाजी के मत का ही प्रतिपादन किया। डा० श्यामसुन्दरदास ने ओझाजी के मत को स्वीकार करते हुए अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में यह स्वीकार किया कि 'रासो' में प्रक्षिप्त अंश बहुत हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से 'रासो' को जाली और अप्रामाणिक मानने वालों में श्री ओझाजी के प्रमाण विशेष महत्त्व रखते हैं। आपके मतानुसार 'पृथ्वीराज रासो' बिल्कुल अनैतिहासिक ग्रन्थ है। उसमें चौहान, प्रतिहार, और सोलंकियों की उत्पत्ति के संबंध की कथा, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, बहिन, भाई, पुत्र और पटरानियां आदि विषयक कथायें, अनेक घटनाओं के सम्वत् तथा उसके सामन्तों आदि के नाम अशुद्ध और कपोल कल्पित हैं। 'पृथ्वीराज रासो' यदि पृथ्वीराज के समय का रचित ग्रन्थ होता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असम्भव था। साथ ही भाषा की दृष्टि से भी ग्रन्थ अर्वाचीन ही कहा जायगा। वस्तुत: श्री ओझाजी की दृष्टि में 'पृथ्वीराज रासो' सम्वत् १६०० के आस पास लिखा गया होगा। सम्वत् १५१७ की प्रशस्ति में में 'रासो' की घटनाओं का उल्लेख नहीं है और 'रासो' की सबसे प्राचीन प्रति सम्वत् १६४२ की प्राप्त हुई है जिसके बाद यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। इस प्रकार आपकी दृष्टि में 'रासो' को अप्रामाणिक मानने के दो मूल कारण है, घटना वैषम्य तथा काल वैषम्य। आपके विचार से 'पृथ्वीराज रासो' के समर्थकों की उक्तियाँ, जो 'रासो' को प्राचीन सिद्ध करने के लिए दी

जाती हैं वे भी निराधार हैं।

श्री ओझा जी का 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक गवेषणात्मक निबंध काशी नागरी प्रचारिणी सभा के 'कोषोत्सव-स्मारक-संग्रह' में प्रकाशित हुआ था। उसी निबंध के आधार पर श्री ओझा जी के विवरणों का साराँश निम्नलिखित है; साथ ही मान्य विद्वानों के प्रमाणों सहित शंकाओं का समाधान भी प्रस्तुत किया गया है:-

(१) 'पृथ्वीराज रासो' में परिहार, चाल्युक्य तथा परमार कुल के क्षत्रियों को अग्निवंशी बतलाया गया है। आगे चल कर चाहुँवान की उत्पत्ति भी वशिष्ठ द्वारा रचे हुए एक दूसरे यज्ञ-कुंड से बतलाई गई है। जिसके अनुसार यज्ञ में वशिष्ठ ने आहुति दी और चाहुँवान का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे चौहानों की उत्पत्ति हुई।' किन्तु यह शिला लेखों के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि १६ वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी शिला लेख अथवा पुस्तक में कहीं भी इन क्षत्रियों को अग्निवंशी नहीं कहा गया है। वि० सं० ९०० के आस पास प्रतिहार राजा भोजदेव की एक प्रशस्ति मिली है जिसमें प्रतिहार सूर्यवंशी बतलाए गए है। इसके अतिरिक्त चालुक्य राजा विक्रमादित्य के दान-पत्र तथा जैनाचार्य हेमचन्द्र के 'द्वयाश्रय-महाकाव्य' में चालुक्यों को चन्द्रवंशी ही लिखा गया है। चौहानों के भी सूर्यवंशी होने के प्रमाणों में विग्रह राज चतुर्थ रचित 'हरिकेली' नाटक है जिसमें चौहानों को सूर्यवंशी ही कहा गया है उसके राजकवि सोमेश्वर रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक तथा चौहानों के इतिहास का शिलाओं पर खोदित एक काव्य में भी चौहानों के सूर्यवंशी होने का ही उल्लेख है। 'पृथ्वीराज-विजय में भी चौहानों को सूर्यवंशी ही लिखा है।

इस प्रकार पृथ्वीराज के पूर्व अनेकों शिला लेखों तथा पुस्तकों

के उल्लेख से सिद्ध हो जाता है कि पृथ्वीराज के समय तक चौहान सोलंकी तथा परिहार कहीं भी अग्निवंशी नहीं माने जाते थे। अतः चन्द पृथ्वीराज का समकालीन न होकर १५ वीं शताब्दी के बाद का ही हो सकता है।

—'रासो' में वर्णन है कि आबू पर्वत पर अनेक ऋषियों को यज्ञानुष्ठान करते देख कर, दानवों ने उसमें नाना प्रकार के विघ्न डालने आरम्भ किये, यह देख कर ऋषि गण वशिष्ठ के पास गये और उनसे राक्षसों का विनाश करने की प्रार्थना की।१ तब वशिष्ठ ने अग्नि-कुंड से प्रतिहार, चालुक्य और परमार इन तीन वीर पुरुषों को उत्पन्न किया जो राक्षसों से लड़ पड़े। परन्तु असुरों का उपद्रव शान्त न होते देख कर, वशिष्ठ ने देवताओं का अंश ग्रहण करने वाले व असुरों का दमन करने वाले वीर को उत्पन्न करने का विचार किया, और फिर उन्होंने ब्रह्मा की स्तुति करके मंत्रों द्वारा अनल-कुंड से विशाल देह, और रक्त वर्ण के चार मुखों वाले तथा खड्ग धारण किये चार भुजाओं वाले 'चाहुवान' को उत्पन्न किया।२ अग्नि से उत्पन्न इन चारों क्षत्रियों ने ऋषियों का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कराया। इन्हीं के वंश में पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

चौहानों को अग्निवंशी माने जाने के हेतु पर कवि वर सूर्यमल्ल ने अपने 'वंश भास्कर' में लिखा है—"कितने ही लोग अग्नि वंश को सूर्यवंश कह कर वर्णन करते हैं, उनमें तेज तत्व की एकता के कारण विरोध नहीं समझना चाहिए। ‡

---

१-छन्द २४४-४८ सं० १

२-छन्द २५०-५६ सं० १

‡ अनल अन्ववाय हि किते बखत सौर बखानि
तेज तत्व एकत्व करि, नहिं विरोध तहँ जानि॥

श्री पं० झाबरमल शर्मा ने चन्द द्वारा अर्बुदगिरि के यज्ञ की कथा के रचे जाने का उल्लेख करते हुए बताया है कि कर्नल टाड़ और श्री ओझा जी राव लुम्भा के शिला लेख के आधार पर चौहानों को अपने को 'वत्स-गोत्री' कहता हुआ मानते हैं। अस्तु उनके अनुसार वत्स-गोत्र ही चौहानों को अग्नि-वंश से संबंधित करता है। निष्कर्ष निकालते हुए शर्माजी का कथन है कि 'हिन्दुओं के यहां आठ बड़े गोत्र प्रवर्तक ऋषि हो गए हैं–विश्वमित्र, भृगु, भारद्वाज, गौतम, अत्रि,वशिष्ठ, कश्यप और अगत्स्य। इनमें से भृगु-गोत्र की ७ शाखाओं [वत्स, त्रिद, आर्ष्टिषेण, यास्क, मित्रयुव, वैन्य और शौनक] में से एक वत्स शाखा है। जब वत्स-गोत्र के आदि पुरुष महर्षि भृगु बताए गए हैं तब यह देखना चाहिए कि भृगु किस वंश के हैं मनुस्मृति में लिखा है—इदम् चुर्महात्मानं अनलं प्रभवं भृगुं (५-१)। इसमें भृगु का विशेषण अनल प्रभाव स्पष्ट है। इस संबंध में केवल मनु-स्मृति ही नहीं श्रुति भी साक्षी देती है–'तस्य यद्रेतस: प्रथमं देदीप्यते तदसावादित्योऽभवत। यद्वीतीयमासीद भृगु.।' ( अर्थात–उसकी शक्ति से जो पहला प्रकाश (अग्नि) हुआ, वह सूर्य बन गया और जो दूसरा हुआ वही भृगु हुआ ) इसी प्रमाण से भृगु को अनल प्रभव कहा गया है। इस प्रकार भृगु अग्नि-वंशी हुए और भृगुवंशी हुए वत्स। वत्स गोत्री हैं चौहान। अतएव चौहानों को अग्नि वंशी कहलाने में कोई तात्विक आपत्ति नहीं दिखाई देती।-०- अतएव यहां अग्नि, सूर्य का पर्याय है। अस्तु अग्नि को सूर्यवंशी भी काव्य-प्रणेताओं ने कह दिया है। अग्नि वंशी चौहानों को इसीलिए सूर्यवंशी लिखा गया मिलता है। अनुश्रुति भी चौहानों को अग्निवंशी ही मानती आई है। शिला लेखों में इस संबंध में कुछ विरोधी प्रमाण प्राप्त होते हैं।

-०- 'चौहानों के अग्निवंशी कहलाने का आधार' 'राजस्थानी' भाग ३, अंक २, पृ० ७–८।

सं० १३७७ का आबू के अचलेश्वर मंदिर से प्राप्त शिला लेख में चौहानों के पूर्व पुरुष को वत्स-गोत्री मात्र ही नहीं वरन उसे चन्द्र-वंशी भी बताया गया है अतः रासो में चौहानों का अग्निवंशी होने का उल्लेख अधिक ऐतिहासिक माना जायगा। काव्यों और शिला लेखों में जो उन्हें सूर्यवंशी लिखा गया है वह केवल मात्र तेज तत्व की समानता के आधार पर ही।

(२) 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार दिल्ली के तंवर राजा अनंगपाल ने अपनी छोटी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अंत में अनंगपाल दिल्ली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर तप करने बदरिकाश्रम चला गया।' इससे यह विदित होता है कि पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था, किन्तु यह नाम अशुद्ध है 'पृथ्वीराज-विजय' तथा 'हम्मीर-महाकाव्य' आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी सिद्ध होता है और वह अनंगपाल की पुत्री नहीं प्रत्युत त्रिपुरी के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा तेजल (अचलराज) की पुत्री थी। दिल्ली का राज्य भी पहिले ही वि० सं० १२२० में चौहान राजा विग्रह-राज चतुर्थ ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। अतः 'रासो' के दोनों कथन अनैतिहासिक सिद्ध हो जाते हैं।

श्री ओझा जी के इस मत का खण्डन करते हुए महामहो पाध्याय श्री मथुराप्रसाद जी दीक्षित ने लिखा है —'सोमेश्वर के विवाह संबंध में इतना कहना पर्याप्त है कि राजाओं के अनेक विवाह होते थे। दिल्ली को अजमेर नरेश के आधीन मान लेने पर भी दिल्ली नरेश अजमेर नरेश के यहां विवाह नहीं करेगा यह नहीं सिद्ध होता है। और जिस पृथ्वीराज काव्य के आधार

पर वे वैसा आरोप करते हैं वही संदिग्धास्पद है' । ×

डा० दशरथ शर्मा ने 'ललित-विग्रहराज' नाटक (राजपूताना म्यूजियम, अजमेर) के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि दिल्ली के अन्तिम तोमर शासक ने अपना राज्य वीसलदेव चतुर्थ को अपनी कन्या के दहेज में दे दिया था, यही कथा 'रासो' के परवर्ती संशोधन कर्ताओं द्वारा उनके छोटे भाई सोमेश्वर के साथ जोड़ दी गई है। × डा० शर्मा ने बीकानेर-फोर्ट-लाइब्रेरी की रामसिंह जी के समय की लगभग सं० १६५७ वि० लिखित ४००४ छन्द परिमाण वाली 'रासो' की हस्तलिखित प्रति की प्रामाणिकता की विवेचना करते हुए यह मन्तव्य प्रकट किया है कि–'सोमेश्वर की स्त्री को अनंगपाल की पुत्री अवश्य बतलाया गया है। परन्तु संभव है कि वे पृथ्वीराज की विमाता हों। दिल्ली के बीसलदेव के आधीन होने पर भी तोमर राजाओं का वहां रहना संभव है। +

कविराज मोहनसिंह वि० सं० १२०० में अनंगपाल तोमर का दिल्लीपति होना मानते हैं। आपके कथन का आधार दिल्ली में कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के अहाते में पड़े हुए लोह स्तम्भ के लेख "संवत् ११०९ अनंगपाल वही" का अर्थ' दिल्ली संवत अथवा पंड्याजी के अनंद विक्रम संवत ११०९ में अनंगपाल द्वारा दिल्ली बसाना' (या जीर्णोद्धार करना)

---

×'पृथ्वीराज रासो और चन्द बरदाई' सरस्वती नवंम्बर १९३५ पृष्ठ सं० ४५९

×'The Age and the Historical quarterly, vol. xvi December 1940

+'पृथ्वीराज रासो की एक प्राचीन प्रति और उसकी प्रामाणिकता' ना० प्र० प० पृष्ठ २७५–८२ सं १९९६,

करके उक्त सम्वत् में ९१ वर्ष जोड़कर वि० सं० ११०० में अनंगपाल का दिल्लीश्वर होना है। 'जिनपाल रचित' खतरगच्छ-पट्टावली का अनुसरण करते हुए श्री अगरचन्दजी नाहटा और डा० दशरथ शर्मा आदि विद्वानों ने वि० सं० १२२३ के लगभग मदनपाल नामक राजा का नाम दिल्ली के शासक रूप में होना लिखा है। राजा मदनपाल और अनंगपाल नाम एक ही व्यक्ति का पर्यायवाची मानते हुए कविराज श्री मोहनसिंहजी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "जब उपरोक्त प्रमाणों से और लोक प्रसिद्धि से अनंगपाल तंवर का उस समय होना सिद्ध होता है तो उसकी पुत्री कमला से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का विवाह होने में कोई शंका नहीं होनी चाहिए और बहु विवाह होने की प्रथा होने से कर्पूरदेवी भी सोमेश्वर की रानी रही हो और विमाता होने से उसको भी पृथ्वीराज की माता लिखा गया हो, यह संभव है। पृथ्वीराज विषयक अन्य पुस्तकादि ( पृथ्वीराज विजय और हम्मीर काव्य ) में लिखे गये उसके जीवन वृत्तान्त पर खूब सोचने से पृथ्वीराज का जन्म 'रासो' में लिखे अनुसार वि० सं० ११०५-६ में होना ही मानना पड़ता है। परन्तु विद्वानों ने (ओझाजी) सोमेश्वर का विवाह कर्पूरदेवी के साथ वि० सं० १२१८ के बाद होना माना है, अतः पृथ्वीराज का कर्पूरदेवी के गर्भ से उत्पन्न होना संभव नहीं है। ‡ यह भी संभव हो सकता है कि जिस प्रकार मदनपाल का पर्याय अनंगपाल हुआ उसी प्रकार कमला का पर्याय भी कर्पूरदेवी बन गया हो। परन्तु ओझाजी के कथनानुसार सं० ११९८ में ही कर्पूरदेवी का विवाह सोमेश्वर के साथ होना सत्य मानते हैं तो यह पर्याय ठीक नहीं बैठता। अतः

‡ पृथ्वीराज रासो पर शंकाएं और उनका समाधान, पृ० १६०,६३ शोध-पत्रिका, भाग २ अंक ३, १९५१

इन आधारों को देखते हुऐ कमला से ही पृथ्वीराज का जन्म होना अधिक संगत प्रतीत होता है।

(३) 'रासो' के अनुसार 'पृथ्वीराज की बहिन पृथाकुंवरी का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह के साथ हुआ था, जो पृथ्वीराज के पक्ष में युद्ध करता हुआ शहाबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध में मारा गया था।' परन्तु ऐतिहासिक अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि समरसिंह के समय का प्रथम शिलालेख सं० १३५८ का प्राप्त है। अत: यह स्पष्ट है कि समरसिंह पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद लगभग १०९ वर्षों तक जीवित रहे। अतएव पृथाबाई के साथ समरसिंह के विवाह की कथा कल्पित प्रतीत होती है।

'रासो' के अनेक स्थलों पर मेवाड़पति रावल समरसिंह का चरित्र-वर्णन किया गया है। विशेषकर सत्ताइसवें समय में गौरी की सेना पर आक्रमण करते हुए, तथा ६६ वें समय में पुन: गौरी के पृथ्वीराज पर आक्रमण किए जाने पर युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर वीर गति प्राप्त करते हैं। युद्ध का परिणाम सुनकर रावलजी की सहगामिनी पृथाबाई सती हो जाती है।+ इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर पृथ्वीराज और समरसिंह का संयोग कवि की लेखनी से प्रभावयुक्त होकर रचा गया है। जिसमें समरसिंह का चरित्र अपनी विशिष्ठता रखता है। पृथ्वीराज के बहनोई होने के कारण चंद ने रावल समरसिंह को अनेक उपाधियों से सुशोभित किया है जिनमें वीर केशरी, समरविक्रम, समर साहस, आदि मुख्य हैं। इन उपाधियों को देखते हुए जब इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो 'रासो' वाला वीर समर विक्रम, शिलालेखों और मेवाड़ की राज वंशावली वाले नाम विक्रम

+ स० ६६, छन्द ३३९.६५।

केसरी अथवा रावल समतसी से मिल जाता है। श्री ओझाजी का यह अनुमान है कि 'समतसी और समरसी नाम परस्पर मिलते-जुलते हैं। अस्तु माना जा सकता है कि अजमेर चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीभट्ट) की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समतसी (सामंतसिंह) से हुआ होगा। डूंगरपुर की ख्यात में पृथाबाई का सम्बन्ध सामतसी से बतलाया ही गया है।" £ आगे चलकर श्री० ओझाजी ने फिर अनुमान लगाया कि—"समतसी और समरसी के नामों में थोड़ा सा ही अन्तर है इसलिए संभव है कि 'पृथ्वीराज रासो' के कर्त्ता ने समतसी को समरसी मान लिया हो और बागड़ का राज्य छूट जाने पर अपने साले पृथ्वीराज के पास चला गया हो और शहाबुद्दीन गौर के साथ मारा गया हो। $ श्री ओझाजी के इस अनुमान से आपकी पूर्व शंका स्वमेव निर्मूल सिद्ध हो जाती है। जिस समरसिंह के शिलालेखों का उल्लेख ओझाजी ने किया है वह तो आहड़ नागड़ा की शाखा में आठ पीढी बाद हुआ था। कुम्भकर्ण के बीदर जाने की घटना क्षेपक सिद्ध हो जाती है क्योंकि लघुतम रूपान्तर में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है।

(४) 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है कि गुजरात के राजा भीम के हाथ से पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर मारे गये। अपने पितृव्य का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज ने गुजरात पर आक्रमण किया। भीमदेव को मारकर उसके पुत्र कचराराय को अपनी ओर से गद्दी पर बिठाकर गुजरात के कुछ परगने अपने राज्य में मिला लिए। ये दोनों घटायें भी कपोल-कल्पित

---

£ उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ५३, सन् १९३६

$ डूँगरपुर का इतिहास, पृ० ५३, सन् १९३६

हैं। भीमदेव वि० सं० १२३५ में बिलकुल बाल्यावस्था में गद्दी पर बैठा था। शिलालेखों तथा प्रबन्धकोष से यह प्रमाणित है कि सोमेश्वर की मृत्यु वि० सं० १२३६ में हुई। इतनी बाल्यावस्था में भीमदेव सोमेश्वर का वध नहीं कर सकता था। पृथ्वीराज के प्रतिशोध लेने की कथा भी असत्य है। भीमदेव का एक शिलालेख वि० सं० १२६५ का तथा एक दानपत्र वि० सं० १५९६ का प्राप्त हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि भीमदेव पृथ्वीराज की मृत्यु से लगभग ५० वर्ष तक जीवित था।

कविराय मोहनसिंह ने इसका समाधान करते हुए लिखा है– " 'रासो' में भीम के द्वारा पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का मारा जाना नहीं बल्कि उसके सामन्तों द्वारा मारा जाना कतिपय 'रासो' के पद्यों से सिद्ध होता है। पृथ्वीराज द्वारा भीम का मारा जाना भी हमारे मत के अनुसार पद्यों में नहीं लिखा गया है।‡ अपने इस मत की पुष्टि में आपने 'रासो' के ही आन्तरिक प्रमाण दिये हैं। § जिससे यह सिद्ध है कि पृथ्वीराज ने भीम के सामन्तों को ही नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी और उसमें उसने विजय भी प्राप्त की। वस्तुतः 'रासो' के मूल पद्यो में सोमेश्वर का भीम के सामन्तों द्वारा मारा जाना है न कि भीम के द्वारा और पृथ्वीराज द्वारा चालुक्य की सेना का पराजित करना तथा पृथ्वीराज का जयपत्र प्राप्त करना ही सिद्ध होता है। वि० सं० १२३५-३६ के निकट भीम को श्री ओझाजी ने बालक ही माना है। परन्तु घांतोड़ से प्राप्त दान-पत्र जो अमृतपाल गुहिलोत का वि० सं० १२४२ का है उसमें वह अपने आपको भीम का कृपा-पात्र

§ शोध पत्रिका, भाग २ अंक ३, सं० १९५१ प० १७१
पृथ्वीराज रासो शंकायें और उनका समाधान i

‡ देखो–स० ३९ छं० १२४, स० ४४ छं० ६,१८,१४,२३,२३।

लिखता है। दान-पत्र में चालुक्यों से विरोधी वंश का होते हुए भी भीम के आतंक से प्रभावित वह ऐसा लिखता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सोमेश्वर की मृत्यु के समय वह बालक नहीं माना जा सकता, बालक भीम किसी भी अवस्था है शत्रुपक्षीय गुहिलोत वंशी अमृतपाल पर अपने आतंक का प्रभाव किस प्रकार जमा सकता है। इसमें यह नहीं कहा जा सकता कि श्री ओझाजी के मतानुसार सोमेश्वर की मृत्यु तक भीम बालक ही था। रही विजय पराजय के श्रेय की बात तो राजा को ही मिलती है न कि सेना को या सामन्तों को।

(५) 'रासो' के अनुसार 'पृथ्वीराज ने ११ वर्ष की अवस्था से ३६ वर्ष की अवस्था तक १४ विवाह किये। 'रासो' में आई हुई संयोगिता स्वयंबर की कथा भी अनैतिहासिक है। कन्नौज के राजा जयचन्द का राजसूय-यज्ञ करना, संयोगिता स्वयंबर, पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा तथा संयोगिता का पृथ्वीराज से विवाह आदि 'रासो' में वर्णित घटनायें किसी भी शिलालेख अथवा इतिहास में उल्लिखित नहीं मिलती। संयोगिता स्वयंबर की यह कथा ऐतिहासिक नहीं है। केवल मात्र जयचन्द पृथ्वीराज का समकालीन अवश्य था, अन्य घटनायें इतिहास विरुद्ध हैं।

'रासो' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज के केवल १० ही विवाह हुए थे। 'बरनी सु अष्ट दुयलेइ ब्याह' में ज्योतिषी द्वार ( ८ और २ ) १० विवाहों का ही संकेत है। शुक-चरित्र में भी १० रानियों का ही उल्लेख है। पृथ्वीराज के निधन पर भी १० ही रानियों के सती होने का उल्लेख मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के १० ही रानियां थी। 'रासो' में विवाह समय क्षेपक और निरर्थक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त

बीकानेर-फोर्ट-लाइब्रेरी तथा बिजोलिया वाली 'रासो' की प्रतियों में पृथ्वीराज के अधिक विवाहों के उल्लेख नहीं हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इंच्छिनी-विवाह का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन विवाहों पर अधिक शोध की आवश्यकता है।

संयोगिता-विवाह को ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्ध माना गया है क्योंकि अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों में उसका उल्लेख नहीं है। परन्तु अनुश्रुति ने संयोगिता स्वयंबर को इतनी प्रधानता और प्रमुखता प्रदान करदी है कि उसे सत्य ही स्वीकार करना पड़ता है। वैसे डा० दशरथ शर्मा का यह कथन भी महत्व से खाली नहीं है कि "पृथ्वीराज-विजय की 'तिलोत्तमा' और सुर्जन-चरित्र की 'कान्तीमती' ही 'रासो' की 'संयोगिता है।१' अबुलफजल ने अपनी 'आइने अकबरी' में इसके कन्नौज से अपहरण किये जाने का वृत्तान्त दिया है।

इनके अतिरिक्त 'रासो' में प्रयुक्त किए गये संवत्, वंशावली और शहाबुद्दीन द्वारा पृथ्वीराज का कैद होना और गौरी का पृथ्वीराज द्वारा वध आदि वर्णित घटनाओं को ऐतिहासिक दृष्टि से कल्पित और अशुद्ध मान कर श्री ओझा जी ने 'रासो' को जाली ग्रन्थ मान लिया है।

श्री ओझा जी के इन तर्कों का उत्तर श्री अगरचन्द नाहटा और डा० दशरथ शर्मा प्रभृति विद्वानों ने अपने गवेषणात्मक लेखों में दिया है। इस सम्बन्ध में श्री रामनारायण दूगड़ के लेख भी पठनीय हैं। डा० दशरथ शर्मा के लेख काशी नागरी प्रचारणी सभा की पत्रिकाओं, राजस्थान-भारती, शोध

---

१-संयोगिता, राजस्थान:भारती, भाग १, अंक २-३, जुलाई अक्टूबर सन् १९४६।

पत्रिका, राजस्थानी तथा इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली आदि में श्री ओझा जी के तर्कों के विद्वतापूर्ण उत्तर दिए हैं जिनसे ओझा जी की शंकाओं का उचित समाधान किया गया है। श्री मोहनसिंह कविराज ने 'रासो' के अन्र्तसाक्ष्य के आधार पर शोध-पत्रिका के दो अंकों में ओझा जी के तर्कों का खंडन पूर्ण रूप से किया है। इन विद्वानों के प्रमाण पुष्ट और पठनीय हैं। प्राचीन लघुतम प्रतियों के आधार पर ही श्री ओझा जी की युक्तियों को निर्मूल सिद्ध कर दिया है।

'रासो' में प्रयुक्त संवतों के सम्बन्ध में कर्नल टाड़ का कथन कि 'रासो' में १०० वर्ष पहिले के संवत् दिए हुए हैं। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'विक्रम साक अनंद' के आधार 'अनन्द' सम्वत की कल्पना की। 'अनंद' शब्द के आधार पर ९१ वर्ष का अन्तर बतला कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि 'पृथ्वीराज रासो' में दिए हुए संवतों में ९१ जोड़ देने से वे शुद्ध विक्रम संवत हो जाते हैं। कविराव मोहन सिंह ने 'अनन्द-सवत' का सम्बन्ध चौहानों के प्राचीन राज वंशी किसी व्यक्ति के समय से प्रचलित संवत् माना है जिसका उल्लेख कुतुबुद्दीन की मसजिद वाले लोहस्तम्भ पर लिखित 'दिल्ली वासा संवत' है जो यही 'अनन्द संवत' होना चाहिए। आपका कथन है कि—'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत चौहान वंश के मूल पुरुष चौहान को भी 'अनल चौहान' लिखा गया है, उसी 'अनल चौहान' (आनन्दराज चौहान) के पराक्रम के उपलक्ष में इस संवत की रचना हुई हो। यह संवत अधिक समय तक नहीं चला और प्रचलित संवत की भांति जनता में व्यवहित भी नहीं हुआ। इसीलिए संभव है प्रकाश में नहीं आया, किन्तु यह निश्चय है कि पंड्या जी के माने

हुए वि० सं० से इसमें ९१ वर्ष की सर्वत्र कमी है, जिसके मिला देने से ठीक वि० सं० बैठ जाता है । ऐसा करने से 'रासो' के संवतों में कहीं गड़बड़ मालूम नहीं होती, किन्तु कहीं २ लेख दोष हो या समझने में हमारा दोष हो तो उनका ध्यान रख कर जांच द्वारा ठीककर लेना आवश्यक है ।२" इसी अंक के लेख में कविराव मोहनसिंह जी ने ओझा जी द्वारा शंकित संवतों को शुद्ध करने का प्रयत्न किया है । इस संबंध में एक बात यह कही जा सकती है कि इस बैठाव में कहीं २ तो संवत ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण मिलान खा जाते हैं परन्तु शेष पर फिर भी प्रश्न सूचक चिन्ह बना रह जाता है। वंशावली के सम्बन्ध में श्री मोहनसिंह कविराव ने चन्द रचित छन्दों की जाति, भाषा, शैली और परमाणादिक का उल्लेख किया है जिसके अनुसार:—

छंद प्रबंध कवित्त जति साटक गाह दुहत्थ ।
लहु गुरू मंडित खडि यहि पिंगल अमर-भरत्त ।।

की उक्ति को ही मान्य और सार्थक माना है ।

प्रो० महमूद खाँ शीरानी ने सन् १९४३ में उर्दू की पुस्तक में 'पृथ्वीराज रासो' में मुसलमानी इतिहासों के आधार पर एव मुसलमानी दृष्टि कोण से 'रासो' में अनेक त्रुटियां दिखाई हैं। इन आक्षेपों का समुचित उत्तर डा० दशरथ शर्मा ने 'राजस्थान-भारती' भाग २ अंक १ में विद्वतापूर्ण दिया है ।

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आधुनिक शोध तथा प्राचीन उपलब्ध रूपांतरों के आधार पर

---

२ शोध-पत्रिका पृ०२३१-३२ भाग २ अंक ४ जून स० १९५१

'पृथ्वीराज रासो' पर ऐतिहासिक दृष्टि से उठायी हुई शंकायें सर्वमान्य नहीं कही जा सकती। यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि पृथ्वीराज के यहां चन्द बरदाई नाम का कवि अवश्य था और उसने रासो ग्रंथ की रचना की थी। परन्तु वह अपने मूल-रूप वैभव को खो चुका है। उसका वर्तमान रूप बहुत ही विकृत है और उसमें अनेक परिवर्तन तथा परिवर्धन हो गये हैं। भाषा का रूप भी विकृत हो गया है इसी प्रकार की मान्यता सर्व श्री मुनि जिनविजय, अगरचन्द नाहटा, डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी, तथा डा० दशरथ शर्मा आदि की भी है। श्री चाटुर्ज्या व श्री शर्मा मूल 'रासो' को अपभ्रंश की रचना मानते हैं। वस्तुतः ऐतिहासिक विवादों के कोलाहल से अलग 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी-साहित्यकारों की अमूल्य धरोहर है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से यह एक अनूठी कृति है। महाराज पृथ्वीराज चौहान सदृश वीर नर पुंगव योद्धा का जीवन-वृत्त होने के कारण इसमें उस काल की आदर्श वीरता का यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है। क्षात्र-धर्म और स्वामी-धर्म निरूपित करने वाले इस महाकाव्य में तेजस्वी क्षत्रीय योद्धाओं के युद्धोत्साह तुमुल और बेजोड़ युद्ध अवर्णनीय हैं। हिन्दी के आदि कवि चन्द बरदाई का यह काव्य अमूल्य गौरव गरिमा से मण्डित साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ है।

## 'रासो' काव्य-ग्रन्थ है इतिहास नहीं!

'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता पर विचार करने के पश्चात् यह जान लेना परमावश्यक है कि 'रासो' इतिहास के खंडहरों की बिखरी हुई ईटें नहीं है अपितु काव्या-काश की ज्योतिर्मय तारि-

कार्य हैं। इतिहास के शुष्क-मरूस्थल में कवि अत्यधिक भटकता नहीं फिरा है, प्रत्युत काव्य के निर्मल सरोवर में अवगाहन कर के उसने उज्ज्वल मणि-माणिक्यों को काव्य-प्रेमियों को दान हेतु साहित्य के तट पर सजा कर बिछाया है। यही कारण है कि इतिहास का तथ्य खोजने वाले विद्वान 'रासो' में ऐतिहासिक घटनाओं की यथार्थता को न पाकर झुंझला उठे हैं और उसे एक दम से जाली ग्रन्थ सिद्ध करने का दुष्प्रयत्न भी कर बैठे हैं। एक पाश्चात्य विद्वान का यह कथन सत्यांश के निकट प्रतीत होता है जब वे इतिहास और काव्य के सम्बन्ध पर विचार करते हुए कहते हैं कि "इतिहास में सन्-सम्वतों तथा राजा महाराजाओं के नाम के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं होता, जब कि काव्य में सन्-सम्वत् आदि सत्य न होकर शेष सब कुछ सत्य होता है।" काव्य में मानव-जीवन की सार्वभौम मनोवृत्तियों का विश्लेषण तथा जीवन के एक उदात्त पक्ष का सत्व स्वरूप प्रतिबिम्बित रहता है। जीवन की विभिन्न क्रीड़ाओं के ऊहा-पोह का मनोवैज्ञानिक विवेचन काव्य की निजी प्रधानता है जब कि इतिहास इन सबसे कोसों दूर रहता है। इतिहास में यदि कोई महत्वपूर्ण बात होती है तो वह है अतीत के एक विशिष्ट वर्ग का लेखा-जोखा तथा तथ्यों और घटनाओं का आंकड़े पुष्ट आकलन। उस लेखे-जोखे में प्रधानता रहती है उस काल के सत्ताधारी की जीवन-चर्या की जो उसकी महत्वाकांक्षा की उग्रता में विकासमान होती रहती है। जन-जीवन की भावनाओं और उसकी वृत्तियों से उसका कोइ सीधा सम्बन्ध नहीं होता। काव्य इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह अवश्य है कि उसमें कल्पना का प्रवाह कहीं २ पर इतना तीव्र होजाता है कि साधारण पाठक उसमें अतिशयोक्ति का रूप देखकर क्षुब्ध हो उठता है, पर उसमें भी जन-मानस की विविध तरंगावलियों की क्रीड़ा तथा उससे चालित लोक का ही भाव

प्रमुख रहता है।

भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक पुरुषों के नाम पर काव्य-ग्रन्थ लिखे जाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से सातवीं-आठवीं शताब्दी के आस पास से गतिशील हुई है। इन ग्रन्थों की रचना तत्कालीन जन भाषा अपभ्रंश में हुई है। संस्कृत-साहित्य में भी ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर कुछ चरित-ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें भी कल्पनाओं का सरस प्रवाह है। हर्षचरित, महाराज हर्ष से सम्बद्ध काव्य-पुस्तक है। इसमें कवि ने अपने आश्रय दाता का जीवन चरित्र वर्णित किया है किन्तु हर्षचरित में इतिहास की अपेक्षा काव्य ही प्रधान है। इस प्रकार शनैः २ ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम पर पद्य अथवा गद्य में लिखने की परम्परा का विकास हुआ। 'रासो' भी इस विकास की एक स्वर्णिम कड़ी है।

कवि में कल्पना प्रचुर मात्रा में रहती है। इतिहास के एक गौण पक्ष को स्वीकार करके वह कल्पना-लोक की भावभूमि पर विचरण करता है। उसकी कल्पना में जीवन का एक सांगोपांग चित्र खिंच जाता है। यथार्थ जगत की छोटी सी घटना कवि-कल्पना के लिए संबल बन जाती है। कवि का यही संबल काव्य की भूमि पर खुलकर अपने वैभव का साज सजा देता है। "इतिवृत्त और कल्पना काव्य के चिरकालीन उपादान हैं। इतिवृत्त उसकी प्रतिष्ठाभूमि है तो कल्पना उसका विकास। एक उसे यथार्थता प्रदान करता है तो दूसरा आदर्श। एक उसे निराधार उड़ने से बचाता है तो दूसरा उसका पाशविकता से त्राण करता है। मानवता के विकास में दोनों ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनो में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा पंगु है। प्रत्येक साहित्य दोनों को साथ लेकर

चला है। हिन्दी साहित्य भी उसका अपवाद नहीं है।† इस प्रकार "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था तथ्य निरूपण का कम, सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम,. उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान लिए गये हैं। राजा का विवाह, शत्रु विजय, जल क्रीड़ा, शैल-वन-विहार, ढोला-विलास, नृत्य-गान-प्रीति—ये सब बातें ही प्रमुख हो उठी हैं। बाद में इतिहास का अंश कम होता गया और सम्भावनाओं का ओर बढ़ता गया। राजा के शत्रु होते हैं, युद्ध होता है। इतिहास की दृष्टि में एक युद्ध हुआ, और भी तो हो सकते थे। कवि संभावना को देखेगा। राजा का एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य अनेकों विवाहों की सम्भावना उत्पन्न करता है, जल क्रीड़ा और वन-विहार की सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है और कवि को अपनी कल्पना के पङ्ख खोल देने का अवसर देता है। ऐतिहासिक विद्वान के लिए संगति मिलाना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी जब चरित्र लिखा जाने लगा तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक वे रचनायें काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं।"‡ अतः यह कहा जा सकता

---

†साहित्य संदेश, पृ० २७१, भाग १२ अङ्क ७ जनवरी १९५१ 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता, ले० श्रीमुंशीराम शर्मा।

‡हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५० ले० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

है कि "सभी ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों के समान इसमें भी (रासो में) इतिहास और कल्पना का फैक्ट और फिक्शन का मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक मानी जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्य गत और कथानक-प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, संभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना को महत्त्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है।§

'पृथ्वीराज रासो' भी ऐतिहासिक महापुरुष के नाम से संबंधित महाकाव्य है। इसमें भी कवि ने संभावनाओं पर अधिक बल दिया है जिससे इतिहास कल्पना के आगे धूमिल पड़ गया है। ऐतिहासिक तथ्य कल्पनाओं की सभावित घटनाओं के नीचे दब से गये हैं। काव्यगत विशिष्टताओं को ही कवि ने महत्त्व दिया है। फिर भी 'रासो' में ऐसे स्थल, ऐसे ऐतिहासिक नाम विद्यमान है जो इतिहास के तथ्य से साम्यता रखते हैं। ऐतिहासिक नामों में पृथ्वीराज चौहान, चामुण्डराय, कैमास, परमाल, जयचन्द और मुहम्मद गौरी आदि के नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार 'रासो' की अधिकांश घटनायें भी इतिहास के निकट ही हैं। प्रक्षिप्त अंशों के निकाल देने से यह बात भली भांति समझ में आजाती है।

"इतिहास पर कल्पना का आवरण तीन रूपों में दिखाई पड़ता है। एक तो ऐतिहासिक घटनाके क्रम विन्यासमें परिवर्तन करना, द्वितीय घटना के स्वरूप में परिवर्तन करना और तृतीय नितान्त नवीन, कल्पित कथाओं का समावेश करना। क्रम विन्यास का परिवर्तन भी दो प्रकार का होता है:—एक काल सम्बन्धी, द्वितीय पात्र

---

§हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ८९ ले० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

सम्बन्धी। काल सम्बन्धी क्रम विन्यास के परिवर्तन का उदाहरण रामचरित मानस में स्वयंवर के अन्तर्गत परशुराम का प्रवेश है। वाल्मिकी रामायण और केशवकृत 'रामचन्द्रिका' में परशुराम स्वयंवर के पश्चात आते हैं। पात्र सम्बन्धी क्रम विन्यास का परिवर्तन रामचन्द्रिका में मुद्रिका तथा वन गमन के प्रसङ्ग में दिखाई देता है। घटना के स्वरूप परिवर्तन का उदाहरण साकेत के कई स्थलों पर है। सम्पूर्ण साकेत भी इसका निदर्शक कहा जा सकता है—विशेष रूप से उसमें आये हुए कैकेयी और चित्रकूट सभा के चित्र। साकेत सन्त के रचयिता ने भी चित्रकूट सभा के प्रसंग को परिवर्तित कर दिया है। कृष्णायनकार ने द्रोणवध तथा जयद्रथवध सम्बन्धी घटनाओं के रूप में परिवर्तन किया है। नितान्त नवीन तथा कल्पित कथाओं के समावेश के उदाहरण रामायण में शम्बूकवध, साकेत में उर्मिला, माण्डवी आदि के चरित्र, जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्ध आदि हैं। ये सब परिवर्तन किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर किए गये हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता ने भी अपने नायक के उत्कर्ष-वर्धन के लिए अनेक अभिनव कल्पना-प्रसूत घटनाओं का समावेश अपने काव्य में किया है। परिवर्तनों से काव्य का मूल्य कम नहीं होता, प्रत्युत बढ़ता ही है। कभी कभी काव्य का सम्पूर्ण ढांचा कल्पना के आधार पर खड़ा किया जाता है, जिसमें आन्तरिक भावनाओं के विश्लेषण की प्रधानता रहती है, जैसे कामना, प्रबोध चन्द्रोदय तथा ज्योत्सना नाम के नाटक। अतः 'रासो' में वर्णित घटनायें इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, तो कौन सी अनोखी बात हो गई? उसका एकान्त इतिहास सम्मत होना अवश्य आश्चर्य जनक होता। फिर भी जिस रूप में वह इस समय हमारे सामने है, उस रूप में भी वह हिन्दी साहित्य

का एक अनुपम अलंकार है और हिन्दी भाषा भाषियों के लिए गर्व की वस्तु है ।'¶

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चंद रचित 'पृथ्वीराज-रासो' इतिहास से अधिक काव्य का महत्त्व लिए एक भव्य रचना है। रासो में अपने युग की सर्वांगीण विशिष्ठताओं का सुन्दर निरूपण हुआ है वह उस युग की सांस्कृतिक चेतना का ज्योतिस्तम्भ है जिसके आलोक में युग-जीवन की लीलाओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। पृथ्वीराज की ऐतिहासिकता सर्वमान्य सत्य है। वह एक महावीर योद्धा के साथ २ क्षमा शील, शरणागत-वत्सल, साधु प्रकृति का पुरुष, दानवीर, विद्वत्-जन अनुरागी, और परम प्रतापी नरेश था। अनेकों दिव्य-गुणों से सम्पन्न वह हिन्दूत्व के गौरव का परम रक्षक था। जिसकी धाक उत्तराखंड के सम्पूर्ण नरेश शीश नवाकर स्वीकार करते थे। ऐसे उदात्त चरित्र को अपने काव्य का नायक बनाकर सचमुच चंद ने अपने को अमर बना लिया है। ऐसे अनुपम चरित्र के उत्कर्ष-वर्धन में कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को छोड़कर यदि कल्पना की रंग-रूप मय रेखायें अंकित की तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुत: इतिहास के पृष्ठों से कहीं अधिक महाराज पृथ्वीराज और कवि चंद का नाम 'रासो' के स्वर्णिम-पदों में अमर रहेगा। 'रासो' "समता-विषमता की शृङ्खलाओं से जुड़ाहुआ, ऐतिहासिक वृत्तों से आच्छादित, पौराणिक कथाओं से लेकर कल्पित कथाओं का अक्षय तूणीर, प्राचीन काव्य परम्पराओं तथा नवीन का प्रति-पादक, भौगोलिक वृत्तों की रहस्यमय गुफा, सहस्त्रों हिन्दू-मुस्लिम

---

¶ साहित्य संदेश भाग १२ अंक ७ जनवरी १९५१ पृ० २७१ से २७३ पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता ले० श्री मुंशीरामजी शर्मा

योद्धाओं के पराक्रम का मात्र–कोष, प्राकृत अभ्रंशकालीन सार्थक अभिव्यंजना करने में क्षम सफल छन्दों की विराट पृष्ठभूमि, हिंदी गुजराती और राजस्थानी भाषाओं की संक्रांति कालीन रचना, गौडीय भाषाओं की अभिसंधि का उत्कृष्ट निदर्शन, समकालीन युग का सांस्कृतिक प्रमाण, उत्तर भारत का आर्थिक मानचित्र, विभिन्न मतावलम्बियों के दार्शनिक तत्त्वों का आख्याता तथा मानव की चित्तवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषक यह अपने ढंग का एक अप्रतिम महाकाव्य है।"

## पद्मावती-समय की कथा

'पद्मावती' समुद्र-शिखर के यादववंशी नृपति विजमसुर ( विजयपाल ) के कुंवर 'पद्मसेन' की कन्या थी। वह यौवन-सुलभ रूप-गुण वैभव की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी, मानों स्वयं ब्रह्मा ने उसे रति तुल्य निर्माण किया हो। एक दिन राज-उपवन में क्रीडा करते हुए उसने एक शुक को पकड़ कर अपने प्रसाद में रख लिया। वह चतुर शुक उसको भांति २ की कथायें कहता था। मनुजवाणी में बोलने वाले उस प्रवीण शुक से पृथ्वीराज चौहान के गुण, सौन्दर्य एवं शौर्य की प्रशंसा सुनकर वह उस पर अनुरक्त हो गई। पद्मावती को विवाह योग्य देखकर उसके पिता पद्मसेन ने अपने सुयोग्य राज-पुरोहित को लग्न-पत्र देकर किसी उच्चवंशी राजपुरुष से उसका विवाह सम्बन्ध निश्चय करने के हेतु भेजा। उस पुरोहित ने कमाऊं गढ के नरेश कुमुदमणि से पद्मावती का विवाह सम्बन्ध तय कर दिया। पद्मावती ने जब यह सुना तो उसको बड़ी चिंता उत्पन्न हुई। उसने पृथ्वीराज चौहान को एक पत्र लिखा और उससे यह विनय की कि वह उसको वरण करके कृतार्थ करे। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने देव-पूजा के स्थान पर आकर

रूक्मिणी का कर ग्रहण करके उसके प्राणों की रक्षा की थी उसी प्रकार पूजा-स्थान पर पहुँचकर वह पद्मावती के प्रण की रक्षा करे।

पद्मावती ने यह संदेश शुक के द्वारा पृथ्वीराज तक पहुँचाया। शुक तीव्रवेग से उड़ता हुआ पृथ्वीराज के निकट पहुँचा और उसको पत्र दिया। पृथ्वीराज ने पत्र पढ़कर तत्काल समुद्र शिखर की ओर प्रस्थान किया तथा उसी समय वहां पहुंचा जिस समय कुमुदमणि भी बारात लेकर विवाह की उमङ्ग में डूबता-उतराता जा पहुँचा था। नियत समय पर देवालय में पूजा का बहाना करके पद्मावती पहुँची और पृथ्वीराज ने उसका हरण किया। क्रुद्ध कुमुदमणि और समुद्र-शिखर की सम्मिलित वाहिनी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया किन्तु पृथ्वीराज विजयी हुआ और वह पद्मावती को दिल्ली दिशा को ओर ले जाने में सफल हुआ। मार्ग में शहाबुद्दीन गौरी से पृथ्वीराज की मुड़भेट हुई परन्तु गौरी को भी पराजित करके वह सकुशल दिल्ली लौट आया। शुभ मुहुर्त में पृथ्वीराज और पद्मावती का विवाह-संस्कार बड़ी धूम धाम से सम्पन्न हुआ और वे सुख पूर्वक अपना दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने लगे।

पद्मावती-समय की कथा का सारांश यही है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह 'समय' अपना विशिष्ठ महत्व रखता है।

## पद्मावती-समय की विशेषता

काव्य-वैभव से अलंकृत 'पद्मावती-समय' कला-सौंदर्य की दृष्टि से एक अभूतपूर्व रचना है। कवि ने प्रस्तुत 'समय' में काव्य के विभिन्न उपकरणों का सुन्दर समन्वय किया है। भाव पक्ष तथा

कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से पद्मावती समय का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जा सकता है । शृङ्गार और वीर रस की उदात्त अनुभूति का सरस एवं ओजपूर्ण प्रवाह पद्मावती-समय की काव्य-सरिता की प्रधान विशेषता है ।

पृथ्वीराज तथा पद्मावती के विवाह का चित्रण करने में कवि ने परम्परागत काव्य-रूढ़ियों का सफलता के साथ निर्देशन किया है । ऐतिहासिक चरित-काव्यों में लेखक संभावनाओं पर अधिक बल देता है । इसी कारण बहुत समय से भारतीय-साहित्य में कुछ ऐसी कथानक-रूढ़ियां व्यवहृत होती आई हैं जिन्होंने काव्य-सौंदर्य के उपकरणों में श्री वृद्धि की है । पद्मावती-समय में भी इसी प्रकार की रूढ़ियों का संयोग भली भांति हुआ है । इस प्रकार की रूढ़ियों में निजन्धरी कथाओं का विशेष योग रहता है ।

इन रूढ़ियों में प्रधान संज्ञा शुक-सारिका की है जिसमें कहानी कहने वाला शुक वा सारिका का रहना आवश्यक ठहराया गया है । कथाओं में इनका तीन प्रकार का कार्य रहता हैं (१) कथा के वक्ता तथा श्रोता के रूप में । 'पृथ्वीराज रासो' में शुक सारिका के द्वारा कथा का विकास हुआ है । बाण भट्ट की कादम्बरी का प्रधान वक्ता शुक ही है । (२) कथा की गति को अग्रसर करने वाले संदेश वाहक के रूप में । पद्मावती-समय में शुक संदेश वाहक का कार्य करता है । 'रासो' के अन्य खण्ड में इन्छिनी के वियोग का संदेश भी पृथ्वीराज को शुक ही देता है । नल-दमयंती का संदेश-वाहक हंस है । संदेशवाहक के रूप में शुक तथा हंस का योग-भारतीय-साहित्य की एक अनुपम सूझ है । राजस्थानी लोक-गीतों तथा आख्यायिकाओं में कपोत, काग और कुरंजा का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । (३) कथा के रहस्यों का उद्घाटन करने वाले भेदिये के रूप में । श्री हर्ष की 'रत्नावली' में नायिका

के गुप्त-प्रेम का रहस्योद्घाटन सारिका द्वारा ही होता है। इस प्रकार प्रेम के क्रिया-व्यापारों के रहस्यों के खोलने के लिए सारिका उपयुक्त पात्र माना गया है।

इसके अतिरिक्त 'स्वप्न में प्रिय का दर्शन करके उसको पाने की प्राप्ति में प्रयत्नशील होना, (रासो, जायसीकृत पद्मावत तथा ढोला-मारू आदि में इस प्रकार के उल्लेख हैं।) बंदीजन के मुख से कीर्ति-वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होकर प्राप्ति की इच्छा करना, मुनि का श्राप, रूप-परिवर्तन, परकाय-प्रवेश, आकाशवाणी, षड् ऋतु और बाराह मासा के माध्यम से विरह-वेदना की अभिव्यक्ति, विजनवन में तथा मानसरोवर तट पर किसी सुन्दरी का दर्शन, प्रेम और प्रयत्न आदि, युद्ध करके शत्रु पक्ष की कन्या से विवाह-हरण आदि अनेक अन्य इन कथानक रूढ़ियों का भारतीय-साहित्य में नियोजन किया गया है। इन कथानक रूढ़ियों के सम्बन्ध में विदेशी विद्वान ब्लूम फील्ड तथा पेन्जर ने महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां दी हैं। जर्मन विद्वान डब्ल्यू० नार्मन ब्राउन ने ऐतिहासिक कथाओं में इन रूढ़ियों को महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लगभग २१ रूढ़ियों का संकेत 'आदिकाल' की पुस्तक में देकर इनकी महत्त्वता पर प्रकाश डाला है। अत; ऐतिहासिक कथा-काव्यों में इन रूढ़ियों का पालन करते हुए कवियों ने वस्तु-संगठन हेतु स्वच्छन्द विचरण किया है जिनसे उनके चरित नायकों का चरित्र अभूतपूर्व कल्पना और तथ्यों का सर्वांगीण विकास लिए हुए है।

पद्मावती-समय की विशेषता जहां काव्य-सौंदर्य के विभिन्न उपकरणों को लेकर मानी जाती है वहां शुक की कथानक-रूढ़ि पालन में भी एक विशेषता स्वीकार की जानी चाहिए। राजस्थान

के एक प्रसिद्ध लोक-गीत में बियोगिन नायिका शुक के द्वारा अपनी मनोगत भावनाओं को अपने प्रिय तक पहुंचाने के लिए आग्रह-अनुरोध करती हुई कहती है—

**उड़जा रे सुआ परदेसां जा जे**
**खबरयां तो ल्याजे म्हारा राजन की।**

परन्तु शुक उसके प्रियतम को पहिचानेगा कैसे ? नायिका इस पहिचान का पूर्ण विवरण, प्रिय के रूप का, उसके वस्त्रों का, उसकी चाल ढाल का, उसके शारीरिक गठन आदि का परिचय देती है। शुक स्वीकृति देकर उसका संदेश ले जाता है। इसी प्रकार काग पक्षी को—'सोने चोंच मंडाऊं रे कागा-खीर खांड तनै बैठ जीमाऊं'' लोभ देकर अपने प्रवासी प्रिय को संदेश देती है। इस प्रकार के सैंकड़ों लोक-गीत तथा आख्यायिकाओं में पक्षियों द्वारा विरह-निवेदन तथा संदेश प्रेषन आदि का रूप उपलब्ध है।

पद्मावती-समय की कथागत घटना चक्र को मोड़ने वाला शुक एक विशेष पात्र है। वह पद्मावनी को अनेक सुन्दर कथायें सुनाकर उसका जहां मनोरंजन करता है, वहीं उसके रूप-सौंदर्य को देखते हुए उस रतितुल्या पद्मावती के लिए पृथ्वीराज रूपी कामदेव के वर की कामना भी करता है। अपने इस प्रयत्न में वह पूर्ण सफल होता है। प्रथम पद्मावती को पृथ्वीराज की ओर अनुरक्त करने में, फिर उसका संदेश पृथ्वीराज को देकर दो स्नेही-हृदयों का मिलन कराने में शुक का प्रयत्न किसी मानव से कम नहीं है। सुख-दुःख का साथी शुक मानव-हृदय का निकटतर सहचर है। शुक-सारिका के इन कार्यों पर आशंका की जा सकती है पर कवि की कल्पना के साथ अपने पंखों को फहराता हुआ

शुक विभूति-सम्पन्न प्राणी की भांति अपने 'पार्ट' को कुशलता पूर्वक अभिनीत करने में पीछे नहीं है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस कथन में सार अवश्य है कि "शुक नामक पक्षी थोड़ा-बहुत मानव-वाणी का अनुकरण अवश्य कर लेता है, और भी तो कर सकता था। जितनी शक्ति उसे प्राप्त है उससे अधिक की संभावना तो है ही। ऋषि के वरदान से वह शक्ति बढ़ सकती है, ऋषि के शाप से पतित गंधर्व यदि सुआ हो गया हो तो पूर्व जन्म के संस्कार उसको कला मर्मज्ञ बना सकते हैं। जब ये संभावनाएं हैं तो क्यों न उसे सकल शास्त्र-विलक्षण सिद्ध कर दिया जाय।‡ अत: पद्मावती- समय में कवि द्वारा इस कथानक रूढ़ि का पालन भारतीय परम्परा का उज्ज्वल उदाहरण है जिससे 'समय' की विशेषता अपनी अक्षुण्यता को स्थिर रखने में पूर्ण सफल है।

## पद्मावती-समय पर विचार

'पृथ्वीराज रासो' के बृहत् संस्करण में पृथ्वीराज के अनेक विवाहों का वर्णन किया गया है परन्तु इन विवाहों का जितना साहित्यिक महत्व है उतना ऐतिहासिक नहीं। 'रासो' के उपलब्ध लघुतम रूपान्तरों में इन विवाहों का इतना विस्तृत उल्लेख नहीं है। लघुतम रूपान्तर में केवल मात्र 'संयोगिता-विवाह' की संभावना की गई है। अन्य विवाह तथा 'पद्मावती-विवाह' का उल्लेख उसमें नहीं है।

'पद्मावती-समय' संभवत: एक कवि की रचना कृति हो सकती है और बाद में प्रक्षिप्तरूप से 'रासो' में समाविष्ट करदी गई हो। पद्मावती का कथानक किसी अंश में कल्पित हो सकता है

‡हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७४।

परन्तु 'पद्मावती' स्वयं कल्पित नहीं मानी जा सकती। 'पद्मावती' के विषय में डा० दशरथ शर्मा ने 'कान्हड़दे प्रबन्ध' (रचनाकाल सं० १४५५) से निम्न उद्धरण देते हुए इस विषय पर प्रकाश डाला है:—

सोमसिरि घरि छठ्ठी बार पृथ्वीराज लीधु अवतार।
पाहलण नइ घरि हूं कूंयरी पद्मावती नामिइ अवतरि ।।२०४।।
तिणि अवतारी पाप आचरिउ, गाइअ विवासो कामण करिउ।
साधिउ मंत्र गर्भ गाइ निइ, चित्त विकार हुउ रायनिइ ।।२०५।।
राय बसि कीधु लोपी लाज, हव्या प्रधान निग मिऊ राज।
घाघर नदी तीर रा सहाबुदीन सुरताणि हणिउ।
सती धर्मि राय ऊधारिउ अगनि प्रवेश अयोद्धा करिउ ।।

जिसके अनुसार यह स्पष्ट है कि १४५५ में लोग पृथ्वीराज की रानी पद्मावती के नाम से परिचित थे। पृथ्वीराज की मृत्यु सं० १२४९ में हुई थी। इससे परवर्त्ती २५० वर्षों में चौहान अपने इतिहास को बहुत कुछ भूल भी गये होंगे तो भी उसकी मुख्य घटनायें उन्हें विस्मृत नहीं हुई होंगी। पद्मावती का पृथ्वीराज से विवाह कुछ ऐसी ही घटना थी, उसने पृथ्वीराज के जीवन क्रम को बदल दिया, उससे कई ऐसे कार्य करवाये जिनकी लोगों को पृथ्वीराज से विशेष संभावना न थी। 'कान्हड़दे-प्रबन्ध' के मुख्य विषय से उसका कुछ सम्बन्ध न होने पर भी शायद इसी कारण से चौहान अखैराज का आश्रित कवि पद्मनाभ पद्मावती के बारे में कुछ शब्द कहे बिना न रह सका। पृथ्वीराज उस पर कुछ समय इतना अनुरक्त हुआ कि सामान्य जन यह समझने लगे कि उसने राजा पर कोई जादू टोना किया है। शायद पृथ्वीराज के प्रधान (कदम्बवास या कैमास) के वध में उसका कुछ हाथ था। यह पद्मावती 'पाहलण' की पुत्री थी। प्रबन्ध ने पाहलण को राजपूत

शाखा और उसके स्थान का उल्लेख नहीं किया है। शायद वह आबू के राजा धारावर्ष परमार का छोटा भाई पहलदान या पाहलण हो जिसके नाम पर पालणपुर या पालनपुर नामक नगर अबतक विद्यमान है। 'कान्हड़दे-प्रबन्ध' के अनुसार पद्मावती किसी राज्य-पुरुष (कैमास) के हनन का कारण बनी थी। और उसके इस कार्य में चौहान राज्य को अत्यधिक क्षति पहुँची थी। पृथ्वीराज रासो में यही बात हमें आबू के परमार राजा की पुत्री, पृथ्वीराज की रानी इच्छनी के विषय में मिलती है। कैमास को दण्ड दिलाने वाली वही थी, और कैमास वध से ही चाहमान साम्राज्य का सूत्रपात हुआ। क्या यह सम्भव नहीं कि वास्तविक जीवन में रानी इच्छनी और पद्मावती एक ही रही हो? उनका पृथक्करण सम्भवतः उस समय हुआ होगा जब चारण और भाट चौहान इतिहास को बहुत अंशों में भूल चुके थे। इसी से उन्हें इच्छनी को आबू के राजा सलाख की पुत्री और जैत परमार की बहन बनाना पड़ा, यद्यपि पृथ्वीराज को गद्दीनशीनी से लगाकर उसकी मृत्यु के बहुत पीछे तक आबू का राजा (प्रहलदान या पाहलदान का बड़ा भाई) धारावर्ष था, और शायद इसी से पूर्व दिशा में उन्हें समुद्र-शिखर नाम के ऐसे दुर्ग की कल्पना करनी पड़ी, जिसके विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता। +

'पद्मावती-समय' में पद्मावती के पिता का नाम 'पद्मसेन' लिखा गया है। पद्म के पर्याय पुरयन का अपभ्रंश में पुलयन, पुल्लहण, पाहलण आदि रूप होना संभव है। इस दृष्टि से पद्मावती के पिता का नाम पद्मसेन होना शब्दों के विकृत रूप के कारण प्रमाणिक माना जा सकता है।

भारतीय साहित्य में पद्मावती तथा शुक से सम्बन्धित अनेक

---

+ मरुभारती भाग १, अंक १।

आख्यान प्रचलित हैं। कल्कि-पुराण में पद्मावती सिंहल देश के राजा की पुत्री के रूप में वर्णित की गई है जिसका विवाह कल्कि से होता है जिसमें सर्वज्ञ नाम का शुक संदेशवाहक का कार्य करता है। जायसी कृत पद्मावत की नायिका भी सिंहलद्वीप के राजा की पुत्री थी और हीरामन सूए के मुख से पदमावती के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन उसपर अनुरक्त हुआ तथा अन्त में महादेव की कृपा से दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। इस प्रकार अनेक आख्यायिकाओं की कथावस्तु पद्मावती, ( पद्मिनी ) और शुक से सम्बन्ध रखती हैं। संभव है इस परम्परा का आरम्भ श्री हर्ष की रत्नावली से चलकर ही हिन्दी-साहित्य में उद्भूत हुआ हो। श्री हर्ष ने सिंहल की राजकुमारी रत्नावली को नायिका के रूप में मान्यता दी है। डा० दशरथ शर्मा का कथन है कि "शायद यही रत्नावली शनैः शनैः हमारे हिन्दी-साहित्य में परिणित हुई हो।"

सिंहलद्वीप की राजपुत्री और शुक का सम्बन्ध अनेक कथाओं के प्रसंग में उपलब्ध है। कथानक रूढ़ि का यह रूप भी हमारी परम्परा का एक विशेष पक्ष है। इन सभी में सिंहल को समुद्र मध्य स्थित कोई द्वीप या शिखर माना गया है। अपभ्रंश साहित्य की कथाओं में भी सिंहल देश का समुद्र मध्य में स्थित होने का उल्लेख है। पद्मावती समय के नगर का नाम समुद्र-शिखर इसी प्रकार की संभावना की ओर संकेत करता है कि उस देश का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से था। अतः पद्मावती समय पर विचार करने पर इन कथानक रूढ़ियों के परम्परा पालन पर ध्यान आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। संस्कृत, पुराण और अपभ्रंश की इस धरोहर को कवि ने 'पद्मावती-समय' में संभाल कर रखा है। साथ ही काव्य के विविध अंगों से सजा-संवार कर अपूर्व सौष्ठवता प्रदान की है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत समय को यदि काल्पनिक मान भी लिया जाय तो भी कथानक रूढ़ि, अनु-

श्रुति तथा काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से पद्मावती-समय के महत्त्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

## पद्मावती समय के प्रक्षिप्त अंश

'पृथ्वीराज रासो' के उपलब्ध लघुतम रूपान्तर में 'पद्मावती-समय' की कथा नहीं दी गई है। कविराव मोहनसिंह ने देवलिया तथा बीकानेर की उपलब्ध प्रतियों के आधार पर पृथ्वीराज रासो का दो खण्डों में सम्पादन कार्य सम्पन्न किया है। प्रथम खण्ड में अपने १७ वें समय के अन्तर्गत पद्मावती समय का प्रकरण दिया है। रासो के बृहत रूपान्तर से प्राप्त 'पद्मावती समय तथा कविरावजी के पद्मावती समय के पदों में कुछ अन्तर है। कवि-रावजी ने उन पदों को प्रक्षिप्त अंश माना है परन्तु 'समय' के महत्त्व को स्वीकार किया है।

कविराव मोहनसिंह जी द्वारा सम्पादित 'पद्मावती-समय' में निम्न पद समविष्ठ नहीं है:—

पद १५ पड़ढ़री पृ० १६—
पद २२ भुजंगी पृ० २२
पद ३१ कवित्त पृ० ३०
पद ३२ पड्ढ़री पृ० ३२
पद ३६ भुजंगप्रयात पृ० ३७
पद ४० भुजंगी पृ० ४२
पद ४४ कवित्त पृ० ४६

इस प्रकार कविरावजी ने पद्मावती-समय में केवल दोहे और कवित्त को ही स्थान दिया है। पड्ढरी, भुंजगी तथा भुंजग प्रयात को प्रक्षिप्त अंश माना है। इन पदों में भी कहीं २ पर कविराज जी ने पाठान्तर भेद किया है जिसका निराकरण यत्र-तत्र टीका भाग में आवश्यक स्थलों पर कर दिया गया है।

—राधेश्याम त्रिपाठी

द्वितीय-खण्ड

# पद्मावती–समय

## पृथ्वीराज रासो का एक महत्वपूर्ण खंड

– दूहा –

पूरब दिस गढ़ गढ़नपति, समुद-सिषर अति द्रुंगग ।१।
तहं सु विजयसुर राज़पति, जादू कुलह अभंगग ।२।।१।।

शब्दार्थ—गढ़=दुर्ग, किला । गढ़नपति=गढ़ों में श्रेष्ठ । समुद-सिषर=समुद्र-शिखर, दुर्ग का नाम । द्रुंगग=( सं० द्रुंग), (अप० द्रुग्ग) दुर्गम, विकट । राजपति=राजाओं का अधिपति । जादू कुलह=(जादव) यादव कुल का । अपभ्रंश में 'ह' प्रत्ययांत षष्ठी विभक्ति का चिन्ह है । अभंगग=(सं. अभग्न) अभेद्य, अजेय, अविछिन्न ।

अर्थः—(१) पूर्व दिशा में, सब गढ़ों में श्रेष्ठ समुद्र-शिखर का अत्यन्त दुर्गम दुर्ग है । (२) वहाँ राजाधिपति विजयसुर नामक यादव वंश का अजेय वीर शासन करता था ।

विशेष—कुछ टीकाकारों ने विजयसुर के स्थान पर विजयपाल का उल्लेख किया है तथा सुर-राजपति का अर्थ देवताओं का राजा इन्द्र माना है । पृथ्वीराज रासो के ख्याति-प्राप्त विद्वान कविराव श्री मोहनसिंह को विजयसुर ही मान्य है । राजा का नाम 'विजयपाल' होना भी संभव हं ।

– दूहा –

हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद ।१।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसांन बहु साद ।२।।२।।

शब्दार्थ:—हसम=(अरबी-हश्मत) वैभव, गौरव, ऐश्वर्य। हयगय=(हय, गज) हाथी, घोड़े। देस अति=अनेक देश। सायर=(सं० सागर) समुद्र। म्रज्जाद=(सं० मर्यादा) सीमा। साद=(सद्द) शब्द।

अर्थ:—(१) वह विशाल वैभव, हाथी, घोड़े (सैन्य बल) तथा अनेक प्रदेशों का स्वामी था, उसकी सीमा तथा मर्यादा समुद्र के समान विस्तृत तथा स्थिर थी। (२) समस्त शक्तिशाली नरेश उसकी सेवा करते थे, तथा (उसके द्वार पर) उच्च शब्द से नगाड़ों (नक्कारों) की गगनभेदी ध्वनि होती रहती थी।

— कवित्त —

धुनि निसांन ब्रहु साद, नाद सुर पंच बजत दिन ।१।
दस हजार हय चढत, हेम नग जटित साज तिन ।२।
गज असंष गजपतिय, मुहर सेना तिय संषह ।३।
इक नायक कर धरि पिनाक,धर भर रज रष्षह ।४।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग अम्मर डमर ।५।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदमसेन कूँवर सुघर।६।।३।।

शब्दार्थ:—सुर पंच=पंच स्वर, पंचम स्वर, अथवा मृदंग, तंत्र, ताल, मुरली और दुंदुभी आदि पांच बाद्यों की समवेत ध्वनि। हय चढत=घुड़-सवार। हेम नग जटित साज=स्वर्ण और रत्नों से जड़ित साज सामान। असंष=असंख्य। गजपतिय=हाथी-सवार। मुहर सेना=(सं० मुखर) मुहरे पर की सेना, हरावल दस्ते, अग्रभाग में रहने वाली सेना। तिय=तीन, संषह=(सं. शंख) तीन शंख सेना। (कविराव मोहनसिंह 'तिय-सक्खह' पाठान्तर का अर्थ सजातीय या सगोत्रीय सेना मानते हैं) पिनाक=धनुष। धर भर=सम्पूर्ण पृथ्वी भर। रज=राज्य, राजसी, रजवा, राजपूती धर्म। रष्षह=रक्षक। सुरंग=सुन्दर। अम्मर=

(सं. अम्यर) आकाश, गगन। डमर=(सं. डम्बर) चंदवा, चदरछत, दलबादल। अंबर-डंबर=संध्याकालीन रंग-बिरंगे बादल। लछिय=( अपभ्रंश-लक्ख ) देखे जाते। पदम=( तत्सम पद्म ) पद्म, धन, अटूट लक्ष्मी।

अर्थ:—(१) उस राजा के यहां नगाड़ों की ध्वनि का शब्द बहुत तीव्र रूप से होता था, प्रतिदिन पंच स्वर में वाद्य बजते रहते थे अथवा मृदंग, तंत्री, ताल, मुरली और दुंदुभी आदि पंच वाद्यों की समवेत ध्वनि सब दिशाओं को मुखर किये रहती थी। (२) उसके पास दस हजार घुड़-सवार सैनिक थे, उन घोड़ों के साज सुवर्ण और रत्नों से जड़े हुए थे। (३) उसकी सेना में अगणित हाथी और हाथियों पर आरूढ़ होने वाले सैनिक थे, उसकी नासीर सेना की संख्या तीन शंख थी। (४) वह एक ऐसा उद्भट सेनानायक था जो हाथ में धनुष धारण करके सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य की ( अथवा रजपूती धर्म की ) रक्षा करता था। (५) उसके दस पुत्र तथा एक पुत्री थी, जो समान (रूप-गुण-सम्पन्न) थे अथवा वे सब उसे समान प्रिय थे। गगन में रंग-बिरंगे बादल उठे हों, ऐसे उसके सुन्दर रथ थे ( अथवा रंगीन छत्रों से आच्छादित उसके पास सुन्दर रथ थे)। (६) उसके कोष में अगणित धन राशि थी, तथा राजकुमारों में पद्मसेन नाम का कुंवर अत्यन्त चतुर था।

विशेष:—'पद्मसेन कूंवर सुघर' का एक टीकाकार ने 'चतुर और सुन्दर पद्मसेन कुंवर उसकी रानी है', ऐसा अर्थ लगाया है जो अशुद्ध तथा भ्रामक है। 'पद्मसेन' राजा विजयसार की रानी नहीं, अपितु कुंवर ( पुत्र ) ही था।

-दूहा-

पदमसेन कूंवर सुघर, ता घर नारि सुजांन।१।

ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससभांन ।२॥४॥

शब्दार्थ—सुघन=सौष्ठवांगी, सुघड़ । ता उर=उसके गर्भ से । ससभान=(सं० शशिभान) चन्द्र किरण ।

अर्थ—(१) उस सुघड़ कुंवर पद्मसेन के घर में बड़ी ही सुजान (सयानी) स्त्री थी । (२) उसके गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया, जो कि मानों चन्द्र किरण की समस्त कलाओं की प्रतिमूर्ति रूप हो ।

—कवित्त—

मनहुं कला ससभांन, कला सोलह् सोबन्निय ।१।
बाल बैंस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय ।२।
बिगसि कमल-म्रिग भमर, नैन खंजन म्रिग लुट्टिय ।३।
हीर कीर अरू बिंब, मोति नष-सिष अहि घुट्टिय ।४।
छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सचिय।५।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय।६॥५॥

शब्दार्थ—बन्निय=बनी हुई । बैंस=(त० वयस) वय, अवस्था । ससिता समीप=चन्द्रमा के निकट अर्थात् यौवन के समीप । 'बाल बैंस ससिता समीप' से तात्पर्य किशोर तथा यौवन वय का संधिकाल। जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय शनैः शनैः होकर अपने पूर्ण विकास को प्राप्त करता है उसी प्रकार वह बालिका किशोर से शनैः शनैः यौवन के आंगन में चरण धर रही थी । कुछ टीकाकारों ने यह अर्थ लगाया है—'अभी उसकी बाल्यावस्था ही है चन्द्रमा ने मानों उसी के पास से अमृत रस पिया हो ।' कमल=कमल मुख । म्रिग=मृग-नेत्र । भमर=(भ्रमर) श्याम भौंहें । नैन खंजन म्रिग लुट्टिय=नेत्रों ने खंजन की सुन्दरता और मृग का भोलापन लूट लिया (उनको पराजित कर दिया ।)

हीर=हीरे सी कान्तिवाली रदपंक्ति। कीर=तोते सी तीखी नाक। बिंब=बिंबाफल से लाल अधर। नषसिष=नख से शिखा तक. सम्पूर्ण रूप से। धुट्टिय=बनाया हुआ। छप्पति=छिपाती है। गयंद=हाथी। हरि=सिंह। गति=चाल। बिहू=विधाता। संचै सचिय=सांचे में ढाल कर निर्मित।

अर्थ—(१) मानो वह कन्या चन्द्रमा की सोलह कलाओं के रूप वैभव से निर्मित साक्षात् चन्द्रकला की प्रतिमूर्ति हो। (२) वह किशोर वय की स्वच्छन्दता में रमण कर यौवन के द्वार पर चरण धर रही थी—इस सामीप्य का वर ही उसके अंग-प्रत्यंग को सौष्ठवता प्रदान कर रहा था, मानों वे अमृत रस का पान कर रहे हों। (३) उसका मुख रूपी कमल विकसित था, उस पर मृग-दृग तथा श्याम (भ्रंग) भौंहे शोभित थी; उसके नेत्रों की चपलता ने खंजन को और विशालता नें मृग को पराजित कर दिया था। (४) हीरकनी तुल्य रद-पंक्ति, कीर तुल्य नासिका, बिंबफल तुल्य अरुण अधर सुशोभित थे, मानों सम्पूर्ण नख-शिख मोती सी कांति से संवारा हुआ हो। (५) अपनी गति से गजराज, सिंह और हंस को भी छिपा देती थी (लज्जित कर देती थी); मानो विधाता ने उसे सांचे में ढालकर रचना की हो। (६) पद्मावती पद्मिनी नायिका के तुल्य थी, मानों कामदेव ने ही उस कामिनी को रचा हो। अलंकार—साँगरूपक।

विशेष—पद्मिनी शब्द का प्रयोग यहां पर 'उत्तम जाति की स्त्रियों' के लिए हुआ है। अति सुकुमार, लज्जावती, बुद्धिमती, उदार, प्रसन्न-वदना, स्वर्ण के समान कमनीय कांतिवाली, पद्म की सी गन्धवाली, सर्वाङ्ग सुन्दरी को साहित्य-शास्त्र में 'पद्मिनी' नायिका कहा गया है। इस नायिका को रति-सुन्दरी, अल्परोमवती, तथा गान-वाद्य परायणा भी कहा गया है।

प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका पद्मावती की वय:सन्धि अवस्था के समाप्त होने के कारण उसके अंगों ने जो विविध रूपता धारण की है, उसीका सुन्दर चित्रण किया है। विद्यापति के एक पद में यौवना नायिका के अनुपम रूप-सौन्दर्य का सर्वाङ्ग चित्रण बहुत सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है :—

कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल, तत कहे न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा ।१।
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम।
पिक बूझल अनुमानी ।२।
नयन बदन परिमल गति तन रूचि।
अओ अति सुललित बानी ।४।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल।
ता अरुझायल हारा ।५।
जनि सुमेरू ऊपर मिलि ऊगल
चाँद विहिनु सब तारा ।६।
लोल कपोल ललित मनि कुंडल।
अधन बिम्ब अध जाई ।७।
भौंह भ्रमर नासापुट सुन्दर।
से देखि कीर लजाई ।८।
भनई विद्यापति से वर नागरि।
आप न पावए कोई ।९।
कंस दलन नारायन सुन्दर।
तसु रंगिनी पए होई ॥१०॥

'बेली क्रिसण रुकमणि री' के निम्न पद में कवि ने रुक्मिणी के स्वाभाविक सौन्दर्य की कमनीय आभा को संवार कर प्रस्तुत किया है—

दल फूलि विमल वन नयन कमल दल,
कोकिल कंठ सुहाइ सर ।
पाँपणि पंख संवारि नवी परि,
भ्रूंहारे भ्रमिया भ्रमर ॥
आणंद सु जु उदो उहास हास अति,
राजति रद रिखपन्ति रूख ॥
नयण कमोदणि दीप नासिका,
मेन केस राकेस मुख ॥

-दूहा-

**मनहुँ कांम कांमिनी रचिय, रचिय रूप को रास ।१।**
**पसु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ।२।।६।।**

शब्दार्थ—रास=(सं० राशि) ढेर । पास=(सं० पाश), बंधन ।

अर्थ—(१) मानों समस्त रूप सौन्दर्य की राशि उस कामिनी की रचना कामदेव ने ही की हो । (२) पशु, पक्षी, सुर, नर और मुनिगण आदि सभी उसके सौन्दर्य-पाश में बंदी बना लिए जाते थे । उसकी मोहिनी सर्वजयी थी ।

-दूहा-

**सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौसठि कला सुजांन ।१।**
**जानि चतुर दस अंगषट, रति बसंत परमांन ।२।।७।।**

शब्दार्थ—सामुद्रिक=वह विद्या, जिससे हस्त-रेखाओं और अंगों के आकार से सुख-सौभाग्य संबंधी शुभाशुभ लक्षण निश्चय किये जाते हैं । चतुरदस=चौदहों विद्याओं में निपुण । अंगषट्=छः अंग वेद के । परमांन=समान ।

अर्थ—(१) उसके शरीर में सामुद्रिक शुभ लक्षण विद्यमान थे, चौंसठ कलाओं में वह निपुण थी। (२) वह चौदहों विद्याओं और वेद के ६ हों अंगों की ज्ञाता थी। उसका रतिभाव वसन्त के समान अपने वैभव का विस्तार करता हुआ उसकी काया रूप वाटिका को छविधाम बना रहा था।

विशेष:—१४ विद्याएं इस प्रकार हैं:—

पुराणन्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः।
वेदा स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः॥

४ वेद १ मीमांसा १ न्याय १ धर्मशास्त्र, १ पुराण।

६४ कलायें निम्नलिखित हैं:—

१. गीतम्। २. वाद्यम्। ३. नृत्यम्। ४. आलेख्यम्। ५. विशेषकच्छेद्यम्। ६. तण्डुलकुसुमबलिविकाराः—(पूजा के लिए अक्षत और रंग-बिरंगे फूलों का सजाना।) ७. पुष्पास्तरणम्। ८. दशनवसनाङ्गरागः। ९. मणिभूमिका कर्म (गचमें मणि बंठाना) १०. शयनरचनम्। ११. उदकवाद्यम् (पानी को इस प्रकार बजाना कि उससे मुरज बाजे की ध्वनि हो।) १२ उदकघात—(जल-क्रीड़ा में सखियों या प्रेमियों का परस्पर जल के छींटें को मार देना।) १३. चित्रयोगाः। १४. माल्य ग्रथन विकल्पाः। १५. शेखरकापीडयोजनम्। १६. नेपथ्यप्रयोगाः। १७. कर्णपत्रभङ्गः। १८. गन्धयुक्तिः। १९ भूषणयोजनम्। २०. ऐन्द्रजालायोगाः। २१. कौचुमारयोगाः। २२. हस्तलाघवम्। २३. विचित्र शाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया—(साग भाजी बनाने का कौशल) २४. पानकरसरागासव योजनम्। २५. सूचीवानकर्माणि। २६. सूत्रक्रीड़ा। २७. वीणाडमरुकवाद्यानि। २८. प्रहेलिका। २९. प्रतिमाला। ३० दुर्वाचकयोगाः। ३१. पुस्तकवाचनम्। ३२. नाट-

काव्यायिकादर्शनम् । ३३. काव्यसमस्यापूणम् । ३४. पट्टिकावेत्रवानविकल्पा: । ३५. तक्षकर्माणि—(सोने चांदी के गहनों और वर्तनों पर काम करना ।) ३६. तक्षणम् । ३७. वास्तुविद्या । ३८. रूप्यरत्नपरीक्षा । ३९. धातुवाद: । ४०. मणिरागाकरज्ञानम् । ४१. वृक्षायुर्वेदयोगा: । ४२. मेषकुक्कुटलावक-युद्ध विधि:-(मेढ़ा, मुर्गा और लावकों का लड़ाना) ४३. शुकसारिकाप्रलापनम् । ४४, उत्पादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम् (शरीर और सिर में मालिश करना) ४५. अक्षरमुष्टिकाकथनम् । ४६. म्लेच्छितविकल्पा: (गुप्त भाषा विज्ञान) ४७. देशभाषाविज्ञानम् । ४८. पुष्पशकटिका । ४९. निमित्तज्ञानम् (शकुन ज्ञान) ५०. यन्त्रमातृका । ५१. धारणमातृका । ५२. सम्पाठ्यम् । ५३. मानसी । ५४. काव्यक्रिया । ५५. अभिधानकोश छन्दोविज्ञानम् । ५६. क्रियाकल्प: । ५७. छलितयोगा: । ५८. वस्त्रगोपनानि । ५९. द्यूतविशेषा: ६० आकर्ष क्रीड़ा (पासा खेलना) ६१. बालक्रीड़नकानि । ६२. वैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् । ६३. वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् । ६४. व्यायामिकीनां विद्यानां ज्ञानम् ।

—दूहा—

**सषियन संग खेलत फिरत, महलनि बागनि वास ।१।**
**कीर इक्क दिष्षिय नयन, तब मन भयो हुलास ।२।।८।।**

शब्दार्थ—हुलास=उल्लास, हर्ष । दिष्षिय=देखा ।

अर्थ—(१) वह (पद्मावती) अपनी सखियों के साथ महलों तथा वाटिकाओं में खेलती (क्रीड़ा करती) फिरती थी । (२) एक दिन एक शुक ने उसकी दृष्टि को विशेष आकृष्ट किया; (शुक को देखकर) तब उसका मन उल्लास (आनन्द) से झूम उठा ।

विशेष—'कीर इक्क दिष्षिय नयन' की भाषा प्राचीनता के अधिक

निकट है। 'इक्क दिष्षिय' प्रयोग डिंगल भाषा का है। परन्तु 'मन अति भयो हुलास' अपेक्षाकृत ब्रजभाषा के अधिक निकट है। डिंगल में ब्रजभाषा की भांति 'ष' का उच्चारण 'ख' सा होता है।

—कवित्त—

मन अति भयो हुलास, बिगसि जनु कोक किरन रवि।१।
अरुन अधर तिय सधर, बिंब फल जानि कीर छवि।२।
यह चाहत चष चक्रित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।३।
चंच चहुट्टिक लोभ, लियो तब गहित अप्प करि।४।
हरषत अनंद मन मंहि हुलस, लै जु महिल भीतर गइय।५।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मंह रष्षत भइय।६।।९।।

शब्दार्थ—कोक=चक्रवाक (पर, कोकनद स्वीकार करते हैं तो अर्थ लाल कमल होगा।) स=वह। धर=धारण करती है (रखती है)। चाहत=इच्छा। चष=(सं. चक्षु) नेत्र। उहजु तक्किय=ताक कर। झर=झट से, शीघ्रता से। चंच चहुट्टिक=चोंच मारी (चलायी)। गहित= ग्रहण किया गया, पकड़ा गया। अप्प=अपना।

अर्थ:—(१) (शुक को देखकर) उसके मन में ऐसा अतीव उल्हास उत्पन्न हुआ मानों कोक पक्षी प्रमुदित हुआ हो, रवि-रश्मि की प्रभा से कमल खिल उठा हो (२) उस (पद्मावती) के अरुण अधर की शोभा के कारण शुक ने उन्हें (अरुण अधर को) बिंबफल समझा। (३) वह भी इच्छा करके चकित नेत्रों से उस शुक को देखने लगी। त्योंही वह शुक ताककर (देखकर) शीघ्रता से उस पर झपटा। (४) तथा बिंब-फल के लोभ से उसने चोंच चलायी; पद्मावती ने भी तब उसे अपने हाथ में पकड़ लिया। (५) और मन में अत्यन्त हर्षित होती हुई, उसे

महल के भीतर ले गई। (६) वहाँ उसने उस शुक को मणि-रत्नों से जटित अनुपम पिंजरे में रख दिया।

विशेष:—'जायसी' ने पद्मावती के नख-शिख वर्णन में इसी प्रकार की मनोहर उक्ति दी है:—

अधर सुरंग अमिअ रस भरे, बिंब सुरंग लाजि बन फरै।

× × × ×

देखि अमिअ रस अधरन्हि, भएउ नासिका कीर।
पवन बास पहुँचावै, अस रन छांड़ि न तीर॥

विद्यापति का यह कथन भी कम महत्वपूर्ण नहीं है:—

पानि–पव–गत–अधर बिम्ब रत, दसन दाड़िम बिज तोरे।
कीर दूर भेज पास न आएब, भौंह धनुहि के भोरे॥

—दूहा—

**तिहो महिल्ल रष्षत भइय, गइय खेल सब भुल्ल।१।**
**चित चुहुँट्टयों कीर सौं, राम पढावत फुल्ल।२॥१०॥**

शब्दार्थ:—महिल्ल=महल में। चहुट्टय=मोहित होगया, रम गया। फुल्ल=फूलकर, प्रसन्न होकर।

अर्थ:—पद्मावती ने उस शुक को अपने महल में रख दिया; उसके अनुराग में वह सब क्रीड़ायें (खेल-कूद) भूल गई। (२) उसका चित्त उस शुक में ही रम गया; तथा अपने हृदय की उत्फुल्लता में वह उसे 'राम राम' पढ़ाने लगी।

विशेष:—भुल्ल, चहुट्टयों और फुल्ल शब्द अपभ्रंश के प्रयोग हैं।

—दूहा—

कोर कुँवरि तन निरषि दिषि, नष-सिष लौं यह रूप ।१।
करता करि बनाय कै, यह पदमिनो सरूप ।२।।११।।

शब्दार्थ:—करता=करतार, विधाता ।

अर्थ:—(१) उस शुक ने राजकुंवरी के शरीर के समस्त अंगों (नख से सिख तक) की सौष्ठवता का अवलोकन कर मन में विचार किया कि (२) इसको विधाता ने इसे सुन्दर पद्मिनी के रूप में ही संवार कर बनाया है ।

—कवित्त—

कुट्टिल केस सुदेष, पौहप रचियत पिक्क सद ।१।
कमल गंध बय संध, हंस गति चलत मंद मद ।२।
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वाति बुंद जस ।३।
भमर भवंहि भुल्लहि सुभाव, मकरंद बास रस ।४।
नैनन निरष्षि सुष पाय सुक,
यह सुदिन्न मूरति रचिय ।५।
उमा प्रसाद हर हेरियत,
मिलहि राज प्रथिराज जिय ।६।।१२।।

शब्दार्थ:—कुटिल=वक्र, घुंघराले । सुदेश=सुन्दर । पौहप=पुहुप, पुष्प । रचियत=रचे हैं, गूंथे गये हैं । पिक्क=पिक, कोयल । सद=शब्द, वचन, स्वर । सेत=श्वेत, श्रेष्ठ । वय संध=किशोर और यौवन का मिलन काल । स्वाति बुंद जस=मोती के समान कांति वाले । हेरियत=खोजना । जिय=मन में ।

अर्थः—(१) उस पद्मावती के सुन्दर कुटिल केश-राश में पुष्प गुंथे हुए थे, कोयल के समान मधुर उसका स्वर था। (२) भव्य काया से कमल पुष्प का सा सौरभ फूट पड़ता था, ऐसी वयः संधि की अवस्था थी। हंस की गति के समान वह मंद-मंद चलती थी। (३) उसके शरीर पर श्वेत वस्त्र सुशोभित थे; नख स्वाति की बूंद (मोती) के समान उज्ज्वल थे। (४) उसके शरीर जन्य सौरभ के कारण मकरन्द रस गंध के लोभ में आकृष्ट होकर भ्रमर अपने को सहज भूलकर (भ्रमवश उसे विकसित कमल पुष्प समझ कर) उसके चारों ओर मंडराते थे। (५) ऐसी उस यौवन-रूप-गुण-सम्पन्न पद्मावती को नेत्रों से देखकर शुक ने सुख का अनुभव किया; और विचार करने लगा कि विधाता द्वारा इस रूप सम्पन्न अलौकिक मूर्ति की रचना किसी शुभ दिन में ही सम्पन्न हुई है। (६) इसके लिए उमा (पार्वती) के प्रसाद (कृपा) से शिव जैसे पति को खोजना चाहिए; (शुक ने मन में विचार किया) इसको पृथ्वीराज जैसा पति ही प्राप्त हो।

विशेषः—विद्यापति ने रूपक के द्वारा कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

सारंग नयन, बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग ऊपर उगल दस सारंग, केलि करिथ मधुपाने॥

(२) रति शास्त्र के अनुसार पद्मिनी नायिका के शरीर से कमल की सी सौरभ आया करती है।

(३) राजस्थान में कुंआरी विवाह योग्य कन्याएं शिव जैसा पति पाने के लिए गौरी (पार्वती) की पूजाराधन करती हैं। 'जलहर जामी दीजे' में स्पष्ट संकेत करती हुई कन्याएं गौरी की प्रतिमा के सम्मुख अपनी स्वाभाविक इच्छा व्यक्त करती हैं। गौरी पूजन (गणगौर) का यह पखवाड़ा राजस्थान में विशेष धूम-धाम से मनाया जाता है। 'ऊमा

प्रसाद हर हेरियत' में शुक, पार्वती की कृपा से ही शिव जैसा पति पद्मिनी को प्राप्त हो, ऐसी कामना करता है। कवि द्वारा यों पद्मिनी की विवाह योग्य अवस्था का तथा गौरी पूजन की उसकी स्वाभाविक अनुरक्ति का लाक्षणिक संकेत हुआ है। कुछ टीकाकारों ने इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार दिया है—'शुक उमा और शिव के प्रसाद की कामना करता है कि इसे महाराज पृथ्वीराज वर रूप में मिलें।' इस पद का ऐसा अर्थ यों इसलिए किया गया प्रतीत होता है कि संभवतया टीकाकारों को राजस्थान के लोक-प्रिय 'गणगौर' पर्व का परिचय न रहा हो

—दूहा—

सुक समीप मन कुंवरि कौ, लग्यौ वचन के हेत।१।
अति विचित्र पण्डित सुआ, कथत जु कथा अमेत।२।।१३।।

शब्दार्थ—हेत=हेतु, इच्छा, कारण। अमेत=अमित, असंख्य, अनेक।

अर्थ—(१) राजकुमारी का मन (शुक की) मधुर वाणी सुनने के लिए शुक के समीप ही लगा रहता था। (२) क्योंकि वह शुक अद्‌भुत पण्डित था और (मनुष्य की वाणी में) राजकुमारी को अनेक कथाएं कहा करता था।

—गाथा—

पुच्छत बयन सुबाले,
उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये। १।
कवन नाम तुअ देसं,
कवन इंद करै परवेसं। २।
उच्चरिअ कीर सुनि वयनं,

हिंदबान दिल्लीगढ़ अयनं । ३ ।
तहां इंद अवतार चहुआनं,
तहं प्रथिराजह सूर सुंभारं । ४ ।। १४ ।।

शब्दार्थ:—पुच्छत=पूछती है । उच्चरिय=उच्चारण करना, कहना । सच्च सच्चाये=सत्य बात (कथन) । (२) कवन=कउन=कौन । इंद=इंद्र, राजा । परवेसं=(सं. परिवेष्य,) परिधि, वेष्टन, घेरा । (३) अयनं= स्थान, (अस्थान) । सूर=शूरवीर । सुम्भारं=बड़ा, भारी ।

अर्थ:—(१) तब वह श्रेष्ठ रमणी पूछने लगी कि हे शुक, सत्य बताओ, (२) तुम्हारे देश का क्या नाम है तथा कौनसा राजा राज्य करता है ? (उसके राज्य की परिधि कितनी है ?) (३) उसके वचन सुनकर शुक ने इस प्रकार कहा—"हिन्दुस्तान में एक स्थान पर दिल्ली का गढ़ है । (४) वहां का राजा पृथ्वीराज चौहान वंश में इन्द्र के समान अवतरित हुआ है । जो बड़ा पराक्रमी सुभट है ।"

विशेष:—'सूर सुभानं' का पाठान्तर होने पर अर्थ होगा 'सूर्य के समान तेजस्वी योद्धा ।'

## —पद्धरी (पड्ढ़री)—

पद्मावतीहि कुंवरी संघत्त,
दुज कथा कहत सुनि-सुनि सुबत्त ।१।
हिंदवान थांन उत्तम सुदेस;
तहं उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ।२।
संभरि-नरेस चहुंआन थान;
प्रथिराज तहाँ राजंत भांन ।३।

बैसह बरीस षोड़स नरिंद;
आजानुबाहु भुअलोक यंद ।४।
संभरि – नरेश सोमेस – पूत
देवंत रूप अवतार धूत ।५।
सामंत सूर सब्बै अपार ;
भूजांन भीम जिम सार भार ।६।
जिहि पकरि साह साहाब लीन;
तिहूँ बेर करिय पानीय हीन ।७।
सिंगिनी सुसद्द गुन चढ़ि जंजीर;
चुक्के न सबद बेधंत तीर ।८।
बलि बैन करन जिमि दांन मान;
सत साहस सील हरिचंद समान ।९।
साहस सुक्रंभ विक्रम जु बीर;
दसाँनव सुत्त अवतार धीर ।१०।
दस-च्यार जानि सब कला भूप;
कंद्रप्प जांनि अवतार रूप ।११। ॥१५॥

शब्दार्थ:—संवत=(सं. संघात) साथ, समीप से। दुज=(सं. द्विज) पक्षी, शुक। सुबत्त=सुवृत्त, सुन्दर कथा। राजंत=शोभित। भांन=सूर्य। बैसह=वयस, आयु। बरीस=वर्ष। आजानुबाहु=घुटनों तक लम्बी भुजायें। (ऐसी दीर्घ भुजाओं वाला मनुष्य महान होता है; काव्य-रूढ़ि के अनुसार महान पुरुषों की भुजायें घुटनों तक लम्बी मानी जाती है)। भुअलोक=भूलोक, पृथ्वी पर। घूत=(सं. घृत)

धारण किया; पराक्रमी। भूजांन=भोक्ता, भुजाएं। भीम=विशाल, बलिष्ठ। सार=लोहा, वसुन्धरा। जिंहि पकरि साह साहाब लीन (अन्वय—जिंहि पकरि लीन साह साहाब) पकरि लीन=पकड़ लिया, बन्दी बनाया। साह साहाब=शहाबुद्दीन शाह। तिहुंवेर=तीन बार। पानीप-हीन=(पानी उतार लेना) श्री-हीन, मर्यादा-हीन करना। सिंगिनी सुसद्द=सिंगी बाजे का शब्द। गुन=गुनकर, सुनकर। बेंन=बेण, राजा पृथु के पिता का नाम। दिस च्यार=(१०+४=१४) चौदह। कंद्रप्प=कामदेव।

अर्थ—(१) वह शुक पद्मावती से 'सुनो, सुनो! बड़ी सुन्दर बात है।'—कहकर कथा (पृथ्वीराज की) कहने लगा। (२) हिन्दुस्तान नामक बड़ा श्रेष्ठ और सुन्दर देश है; वहां उस देश में दिल्ली का उत्तम दुर्ग शोभायमान है। (३) वह सांभर के चौहान-वंशी क्षत्रिय राजाओं का स्थान है (अथवा वह स्थान चौहान-वंशी सांभर नरेश (सोमेश्वर) का है)। वहां पृथ्वीराज सूर्य के समान सुशोभित है। (४) वे नरेश आयु में सोलह वर्ष के हैं; (अर्थात् युवक हैं, पद्मावती और उनकी वय समान है)। वे आजानबाहु हैं और इस पृथ्वी पर इन्द्र के समान हैं। (५) वे सांभर नरेश सोमेश्वर के पुत्र हैं; मानो किसी देवता ने ही उनके रूप में अवतार धारण किया हो। (६) उनका समस्त सामन्त-समूह अपरिमित और शूरवीर है (अथवा समस्त समूह में वे ही एक अपरिमेय शूरवीर हैं), उनकी भुजाएं अत्यन्त बलशालिनी हैं और भुज-दंड लोह के समान दृढ़ हैं। (७) जिन्होंने शहाबुद्दीन शाह को तीन बार संग्राम में (पराजित करके) पकड़ लिया और उसको श्रीहीन क छोड़ दिया। (८) सिंगी बाजे का नाद सुनकर, निशाना साधकर जो तीर धनुष की डोरी पर चढ़ाकर पृथ्वीराज छोड़ता है, वह कभी भी चूकता नहीं है। (८) राजा पृथ्वीराज दान और मान में बलि, वेणु व कर्ण के तुल्य हैं; तथा शील में सहस्त्रों (सौ हजार) हरिश्चन्द्रों के

समान है (या बढ़कर हैं)। (९) वे साहस और सुकर्म में विक्रमादित्य के समान वीर हैं; पौरुष-पराक्रम में दानव की भांति उन्मत्त और धैर्य का तो मानों वे अवतार ही हैं। (१०) चौदह विद्याओं और समस्त (चौसठ कलाओं) कलाओं के वे मर्मज्ञ ज्ञानी हैं; रूप-सौन्दर्य में कामदेव के अवतार प्रतीत होते हैं।

विशेष:—अष्टम पंक्ति में कवि ने पृथ्वीराज के शब्द-बेधी बाण चलाने की निपुणता का संकेत दिया है जिसका परिचय शहाबुद्दीन गौरी के यहां अन्त में मिलता है।

इस पद में संघत्त, सुव्रत्त, द्रुग्ग, नरिंद, सब्बै, सुसद्द, चक्कइ, सुकम्म, सुमत्त और कंद्रप्प आदि अपभ्रंश भाषा के प्रयोग हैं जिनका रूप कहीं २ विकृत भी हो चुका है।

—दूहा—

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द ।१।
सहस किरन झलहल कमल, रति समीप वर बंद ।२।।१६।।

शब्दार्थ—सुअ=सुत, वह। नंद=आनन्द, पुत्र। झलहल=देदीप्यमान, झिलमिलाना। रति=प्रेम, कामदेव की स्त्री। बंद=बंधन; विद्यमान। पाठान्तर 'बिंद' होने पर 'बींद' (पति) होगा।

अर्थ—वह सोमेश्वर का पुत्र (पृथ्वीराज) साक्षात् कामदेव का अवतार है (अथवा सोमेश्वर को आनन्दित करने वाला कामदेव का अवतार है)। (२) जिस प्रकार सूर्य की सहस्त्र-किरण पाकर कमल प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार वर श्रेष्ठ (पृथ्वीराज) के निकट प्रेम को पाकर वह नायिका (पद्मावती) समग्र ऐश्वर्य के साथ सुशोभित होगी (अथवा वह कामदेव स्वरूप पृथ्वीराज के लिए रति के समान सुयोग्य अर्द्धाङ्गिनी रूप होगी)।

—दूहा—

सुनत स्रवन प्रथिराज जस,
उमंग बाल – विधु अंग ।१।
तन मन चित चिहुआंन पर,
बस्यो सुरत्तह रङ्ग ।२।।१७।।

शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा; पाठान्तर 'विधि' होने पर अर्थ होगा 'भली प्रकार से'। सुरत्तह=सुरक्त, अनुरक्त।

अर्थ—पृथ्वीराज का यश कानों से सुनकर, उस चद्रमुखी बाला (पद्मावती) के समस्त अंग मृदुकंप से झंकृत हो गये (रोमांचित होगये)। (२) उसके तन, मन और चित्त पर चौहान (पृथ्वीराज) के प्रति सुरति का रंग चढ़ गया, वह प्रेम में रंग कर पृथ्वीराज पर अनुरक्त होगई।

—दूहा—

बैस बितो सिसुता सकल,
आगम कियौ बसन्त ।१।
मात पिता चिन्ता भई,
सोधि जुगति को कन्त ।२।।१८।।

शब्दार्थ:—जगति को=उपयक्त, युवती।

अर्थ—(१) उसकी बाल्यावस्था सम्पूर्ण रूप से व्यतीत होगई और उसके शरीर में यौवन रूपी बसन्त का आगमन हुआ। (२) (उसे विवाह के योग्य पाकर) माता-पिता को उसके लिए उपयुक्त वर ढूंढने की चिन्ता हुई तथा इस हेतु कौन-सा मार्ग अपनाया जाय इस संबंध में मंत्रणा की गई।

—कवित्त—

सोधि जुगति को कंत, कियौ तब चित्त चहौं दिस ।१।
लयो विप्र गुरु बोल, कही समझाय बात तिस ।।२।
नर नरिंद नरपतह, बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह ।३।
सीलवंत कुल सुद्ध, देहु कन्या सुनरेसह ।।४।
तब चलन देहु दज्जह लगन,
सगुन वंदियह अप्प तन ।५।
आनन्द उछाह समुदह सिषर,
बजत नद्द नीसांन घन ।६।।१९।।

शब्दार्थ:—तिस=(प्रा० तिस्स) उसको । लयो=बुलाकर । असेसह =अशेष, सम्पूर्ण, असंख्य । दुज्जह=(सं० द्विज, अं० दुज्ज) द्विज को, ब्राह्मण को । लगन=विवाह का लग्न । सगन=शकुन, टीका । बंदियह= बांधना । अप्पन तन=अपनें कुटुम्बी को ।

अर्थ:—(१) पद्मावती के उपयुक्त वर चयन करने की विधि संबंधी निश्चय के उपरान्त राजा ने अपने चित्त को चारों ओर दौड़ाया । (२) अपने कुलगुरु पुरोहित को बुलाकर उसने सब बातें समझाकर कहीं (३) कि बड़े-बड़े गढ़ों और अनेक दुर्गों में सभी जो नर श्रेष्ठ राजा हैं, (४) उनमें जो शीलवान और कुल में शुद्ध हो ऐसे श्रेष्ठ राजा को यह राजकुमारी समर्पित करना है । (५) जब वह पुरोहित (द्विज श्रेष्ठ) लग्न देने को प्रस्थान करने लगा तब राजा ने शकुन देकर (बंधाकर) उसके साथ अपने कुटुम्बी को भी भेज दिया । (६) सम्पूर्ण समुद्र शिखर में आनन्द और उत्साह छा गया, गम्भीर नाद करते हुए नगारे बजनें लगे ।

—दूहा—

सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊं गढ्ढ दूरङ्ग ।।१।।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग ।।२।।२०।।

शब्दार्थ—सयल=( सं० शैल ) पर्वत श्रेणियां । दूरङ्ग=दुर्गम । द्रिब्ब=(सं०द्रव्य) धन । अभंग=अत्यधिक ।

अर्थ—(१) उत्तरीय पर्वत श्रेणियों पर सवा लक्ष ग्रामों का आधिपत्य स्थान अत्यन्त दुर्गम कुमाऊं गढ़ है । (२) जहां कुमुद मणि राजा राज्य करता है, जिसके पास हाथी, घोड़े आदि अनन्त कोष है ।

विशेष—'सवालष्ष उत्तर सयल' का अर्थ 'शिबालिक नामक उत्तरीय पर्वत शिखर' भी हो सकता है ।

—दूहा—

नारकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मनि-मुत्ति ।।१।
दई जु कन्या वचन वर, अति आनंद करि जुत्ति ।२।२१।।

शब्दार्थ—नारकेलि फल=( शकुन का ) श्रीफल, नारियल । परठि=( सं० प्रतिष्ठाय ) (प्रा० पडिट्ठिय) प्रतिष्ठित करके । मुत्ति= मुक्ता, मोती । जुत्ति=युक्ति ।

अर्थ—(१) पुरोहित ब्राह्मण ने मणि और मोतियों से चौक (आंगन) पूर करके ( मंडित कर ) श्रीफल को प्रतिष्ठित किया । (२) वचन से कन्या उस वर के लिए दे दी ( अर्थात् उस राजा (वर) के साथ कुमारी (पद्मावती) का वाग्दान-संस्कार कर दिया ।) और युक्ति-पूर्ण वचनों से सबको वहां पर आनन्दित किया ।

—भुजङ्गी—

बिहंसित वरं लगन लिन्नो नरिंद ।१।
बजी द्वार-द्वारं सु आनन्द दुंद ।२।
गढनं गढ़ं पत्ति सब बोलि नुत्तो ।३।
आइयं भूप सब्ब कुटुंब सुत्तो ।४।
चले दस सहस्सं असबबार जानं ।५।
परं पूरियं पैदुलं तेजु थानं ।६।
मत्त मद गलितं सै पंच दंती ।७।
मनो सांम पाहार बुग पंति पंती ।८।
चले अग्गि तेजी सु तत्ते तुषारं ।९।
चौवरं चौरासी जु सकत्ति भारं ।१०।
कंठ नगं नूपं अनोषं सुलालं ।११।
रङ्ग पंच रङ्ग ढलवकंत ढालं ।१२।
पंच सुरं सावद्द बाजित्र बाजं ।१३।
सहस सहनाय म्रग मोहि राजं ।१४।
समुद सिर सिषर उच्छाह छाहं ।१५।
रचित मण्डपं तोरनं श्रीयगाहं ।१६।
पद्मावती विलषी वर बाल बेली ।१७।
कही कीर सों बात तब हो अकेली ।१८।
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं ।१९।
बरं चाहुआनं जु आनो नरेसं ।२०।।२२।।

शब्दार्थः—लिन्नो=ग्रहण किया, स्वीकार किया। दुन्द=दुन्दुभी। नुत्ते=नूतना, निमंत्रित किया। सुत्ते=सहित। जानं=जान, बाराती, रथ, यान, सवारी। परं पूरियं=पूरित हुआ। पैदलं तेजु=पैदल चलने में तेज, शीघ्रगामी। थानं=स्थान, छावनी। सं पंच दंती=पाँच सौ हाथी (दंती–हंती–हस्ती)। साम पहार=श्यामपर्वत, कज्जल गिरि। बुगपंत्ति–पंती=बगुलों की पंक्तियाँ। तत्ते=तीव्र, तेजस्वी। तुषारं=घोड़े की जाति विशेष। चौवरं=चंवर। चौरासी=घोड़े के पैर का आभूषण, जिसमें घूंघरे लगे रहते हैं। सकत्ति=शक्तिशाली। नूपं-अनोषं =अनुपम। सुलाल=लाल मणि। सावद्द=शब्द। सहनाय=शहनाई। उछाह=उत्साह। छाहं=छाया। श्रीयंगाह=सुन्दर शोभावाले। वर बाल बेली=नवीन कोमल लता के समान बाला पद्मावती।

अर्थः—(१) उस कुमुदमणि नरेश ने प्रसन्न होकर लग्न (पत्र) स्वीकार कर लिया। (२) इस पर प्रत्येक द्वार पर आनन्द की दुन्दुभी बजने लगी। (३) उसने सब गढ़ों के गढ़पतियों को निमंत्रण देकर बुलाया। (४) सभी राजा सकुटुम्ब आगये। (५) दस सहस्त्र रथारोही बाराती के रूप में चले। (६) जितना स्थान था वह सब शीघ्रगामी पैदल चलने वाले सैनिकों से परिपूरित होगया। (७) पांच सौ मदमस्त हाथी थे जिनसे मद चू रहा था। (८) एक पंक्ति में चलते हुए हाथी कज्जल गिरि से प्रतीत होते थे तथा उनकी दंत-पंक्ति बगुलों की पंक्तियों के समान सुशोभित मालूम पड़ती थी। अर्थात् काले हाथियों के दांत ऐसे प्रतीत होते थे मानो कज्जल गिरि पर बगुलों की पंक्ति बठी हो। (९) अग्र भाग में तुषार जाति के तेजस्वी घोड़े तीव्र वेग से चल रहे थे (१०)जो भार सम्पन्न चंवर-चौरासी से सुसज्जित थे।(११) उनके कंठ में अनुपम रत्न शोभित हो रहे थे तथा उनपर अमूल्य लाल मणियां पड़ी हुई थीं (१२) और पांच रंगों से रंजित ढालें भी लटक रही थीं। (१३) पांचों प्रकार के वाद्य, सुरीले स्वर से निनादित थे।

(१४) मृगों को विमोहित करने वाली सहस्त्रों शहनाइयाँ बज रही थीं। (१५) सम्पूर्ण समद्र-शिखर में आनन्दोत्साह छाया हुआ था। (१६) अतीव सुन्दर शोभायुक्त तोरण और मण्डप रचे गये थे। (१७) यह सब देखकर कोमल किसलय वदना पद्मावती बिलखने (रुदन) लगी। (१८) और तब एकान्त स्थान में शुक से कहने लगी। (१६) हे शुक, तुम शीघ्र दिल्ली जाओ; (२०) और मेरे मनोनीत वर-श्रेष्ठ राजा चौहान पृथ्वीराज को लाओ।

विशेष:—कुछ टीकाकारों ने 'पूरियं पैदुलं तेजु थानं' का पाठान्तर रूप 'पूरियं पैदलं तेतीसुथानं' लेकर उसका अर्थ 'राज्य के अधीन रहने वाले तैंतीस मंडलों से पैदल सेना आई' किया है। तथा 'चौंवरं चौरासी जु सकत्ति भारं' का अर्थ किया है—उन पर चंवर, चौरासी और भालों के बोझ सजे हुए थे।

—दूहा—

**आँनो तुम्ह चहुँवान बर, अस कहि इहै संदेस।१।**
**सांस सरीरहिं जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस।२।।२३।।**

शब्दार्थ:—आँनो=लाओ।

अर्थ:—(पद्मावती शुक से कहती है) हे शुक! तुम श्रेष्ठ वर चौहान को जाकर लाओ और मेरा यह संदेश कहना। (२) कि जब तक मेरे शरीर में प्राण (श्वांस) है तब तक पृथ्वीराज-नरेश ही मेरे प्रिय हैं (आप ही स्वामी हैं)।

—कवित्त—

**प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिषि कग्गर दिन्नो।१।**
**लगुन बरग रचि सरब, दिन द्वादस ससि लिन्नो।।२।**

सें अरु ग्यारह तीस, साष संवत परमानह ।३।
जो षित्री कुल सुद्ध बरनि वर रष्षहु प्रानह ।।४।।
दिष्षत दिष्ट उच्चरिय बर, इक पलक बिलंब न करिय ।५।
अलगार रयन दिन पंच महि, ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ।।
।।२४।।

शब्दार्थ :—जोग लिषि=यथायोग्य लिखित । कग्गर=कागज, पत्र । दिन्नो=(प्रा० दिण्ण) दिया । सरब=सब । लगन बरग=(लग्न-वर्ग) वैवाहिक लग्न सूचक कुण्डली । द्वादस-ससि=शुक्ल पक्ष की द्वादसी तिथि । सें=सौ । षित्री=क्षत्री । बरनि=वरण-कामा । वर=वरण कर । रष्षहु=रखिए । उच्चरिय=(सं० उच्चिष्ठ:) प्रस्थान कीजिए । अलगार =अलग से, गुप्त रूप से ।

अर्थ :—(१) राजकुमारी ने अपने प्रियतम पृथ्वीराज को यथा योग्य लग्न मुहूर्तादि की बातें लिखकर शुक को पत्र दिया । (२) पत्र में वैवाहिक लग्नादि कुण्डली का विधिवत अंकन कर शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि का निर्देश किया । (३) और वैशाख मास तथा संवत ११३० का परिमाण दिया । (४) (समय का पूर्ण विवरण देकर यह भी लिखा) यदि आप शुद्ध क्षत्रिय कुल के हैं तो मुझ वरण-कामा को शीघ्र ही पधार वरण करके मेरे प्राणों की रक्षा करिये । (५) वर श्रेष्ठ ! आप एक पल का भी विलम्ब न करके (दृष्टि से) देखते ही (शुक को) प्रस्थान कर दीजिए । (६) जिस प्रकार कृष्ण ने गुप्त रूप से पंच-निशि-दिवस में पहुंच कर रुक्मिणी का परिणय किया था, उसी प्रकार मेरा भी वरण कीजिए ।

विशेष:—राजस्थान में पत्र लिखने की रीति 'सिद्ध श्री शुभस्थान सर्वोपमा जोग लिखी अमुक स्थान से अमुक को राम-राम (नमस्कार) बंचावसी आदि प्रारम्भ लिए होती है । जोग लिषि में कवि ने

राजस्थान की इसी प्राचीन परम्परा के द्वारा पत्र-लेखन का संकेत किया है।

श्री मोहनसिंह कविराज ने 'पृथ्वीराज रासो' के पद्मावती समय में दूसरी पंक्ति का पाठान्तर (पृ० ३६१—६२) इस प्रकार लेकर उसका भिन्न अर्थ बिठाया है, जो इस प्रकार है—

'लगुन वरग रचि सरब, हिन्न द्वादस ससि लिन्नों' में 'हिन्न-द्वादस-ससि' का अर्थ बारह में से शशि की संख्या एक कम अर्थात् ग्यारह मानी है, तथा ग्यारह-तीस का अर्थ (११+३०=४१) इकतालीस अर्थात् आनन्द संवत् ११४१ वि. सं. १२३२ माना है। परन्तु यह 'बैठाव' कष्ट-कल्पना सा लगता है।

कुछ टीकाकारों ने चौथी पंक्ति के प्रथम शब्द का 'जोवित्रि' और 'जोपित्रो' पाठान्तर किया है। 'जोवित्रो' पाठ मानने से 'मैं जो शुद्ध कुल की स्त्री हूं' अर्थ होगा तथा 'जोपित्रो' पाठ होने से जो पितृकुल से शुद्ध क्षत्रिय है आदि अर्थ होगा।

—दूहा—

**ज्यौं रुकमनि कन्हर बरिय, ज्यौं बरि संभरि कांत ।१।**
**सिव-मंडप पश्चिम दिसा, पूजि समय सप्रांत ।२।।२५।।**

शब्दार्थः—संभरि-कांत=सांभर-नरेश। सप्रांत=प्रभात के समय।

अर्थः—(१) हे संभर-नरेश ! जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने (पूजा स्थान पर पहुंच कर) रूक्मिणी का वरण किया था उसी प्रकार आप मेरा भी (पूजा स्थान पर) वरण करें। (२) पश्चिम दिशा में शिव का मंडप है, वहां मैं सुप्रभात में पूजन करने आऊंगी।

विशेष:—'बेली क्रिसन-रुक्मिणी' में कवि पृथ्वीराज ने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के प्रेम-प्रसंग का बड़ा ही सुन्दर और प्रभावोत्पादक वर्णन किया है जिसमें इसी प्रकार के आग्रह-अनुरोध का मार्मिक चित्रण है। 'पूजा' के स्थान पर दो स्नेही-हृदयों का मिलन कवियों की विचित्र मनोहारी कल्पना है।

—दूहा—

लै पत्री सुक यौं चल्यौ, उड्यौ गगन गहि बाव ।१।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठजाम में जाव ।२।।२६।।

शब्दार्थ:—बाव=वायु। अट्ठजाम=आठ पहर।

अर्थ:—(१) इस प्रकार पद्मावती का (प्रणय-निवेदन) पत्र लेकर शुक, वायु को ग्रहण करता हुआ, आकाश मार्ग से चला। (२) शुक आठ पहर में ही दिल्ली पहुंच गया, जहां महाराज पृथ्वीराज चौहान थे।

—दूहा—

दिय कग्गर नृपराज कर, षुँलि बंचिय प्रथिराज ।१।
सुक देषत मन में हँसे, कियो चलन को साज ।२।।२७।।

शब्दार्थ:—षुँलि वंचिय=खोलकर पढ़ा।

अर्थ:—(१) शुक ने नरेश (पृथ्वीराज) के हाथ में पत्र प्रदान किया; पृथ्वीराज ने उसे (पत्र को) खोलकर पढ़ा। (२) शुक को देखकर वे मन में प्रसन्न हुए और प्रस्थान के हेतु प्रबन्ध में तत्पर होगए।

—कवित्त—

उहैं घरि उहि पलनि, उहैं दिन वेर उहै सजि ।१।

सकल सूर सामंत, लिए सब बोलि बंब बजि ।२।
अरू कवि चंद अनूप, रूप सरसैं बर कब्बह ।३।
और सेन सब पच्छ; सहस सेना तिय सध्थह ।४।
चामंडराय दिल्लो धरह, गढ़पति करि गढ़ भार दिय ।५।
अलगार राज प्रथिराज सब, पूरब दिसि तब गमन किय।६।
।।२८।।

शब्दार्थ:—उहैं=उसी । बेरसजि=ठीक समय पर, बेला सजाकर । सरसैं=सरस । बंब बजि=बिगुल बजाकर ( रणवाद्य ) । कब्बह=काव्य । सध्थह=( सँ. सथ्य ) साथ में । धरह=धरकर, रखकर ।

अर्थ:—(१) महाराज पृथ्वीराज ने उसी घड़ी, उसी पल, उसी दिन और उसी समय (यात्रा के लिए) सज्जित होकर; (२) रणवाद्य बजाकर समस्त सामंतों को बुलवा लिया । (३) अनुपम, सरस और भाव युक्त (रूपक) काव्य की रचना करने वाले (सुनाने वाले) कवि चंद को भी साथ लिया । (४) शेष सब सैन्य को वहीं छोड़कर, कुल तीन सहस्र सेना साथ में ली । (५) चामण्डराय को किलेदार (गढ़पति) नियुक्त कर तथा दुर्ग का भार सौंप कर दिल्ली ही रखा । (६) और तब गुप्त रूप से (अलग ही अलग) राजा पृथ्वीराज ने अपने समस्त साथियों के साथ पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया ।

विशेष;—कुछ टीकाकारों ने "अनूप रूप सरसै वर कहै बहु" (पाठान्तर) का अर्थ 'वर का अनुपम रूप उस समय बहुत अधिक शोभित हो रहा था' किया है ।

-दूहा-

जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज ।१।
ताही दिन पतिसाह कौं, भइ गज्जनैं आवाज ।२।२९।।

अर्थः—(१) जिस दिन समुद्र-शिखर में राजा कुमुदमणि (कुमाऊं नरेश) की बारात पहुंची, उसी दिन पृथ्वीराज भी वहां पहुंचे। (२) और उसी दिन गजनी में बादशाह (शहाबुद्दीन गोरी) को भी (इस वृतान्त की) सूचना मिली।

—कवित्त—

सुनि गज्जनै आवाज, चढ़्यों साहब्ब दीन वर ।१।
षुरासन मुलतांन, कास काबिलिय मीर धुर ।२।
जंग जुरन जालिम जुझार, भुज सार भार भुग्र ।३।
धर धमंकि भजि सेस, गगन रवि लुप्पि रैन हुग्र ।४।
उल्लटि प्रवाह मनौं सिंधु सम, रुक्कि राह अड्डौ रहिय ।५।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौं, चंद वचन इहि विधि कहिय।६।
।।३०।।

शब्दार्थः—साहब्बदीन=शहाबुद्दीन। कास=एक स्थान विशेष। जालिम जुझार=भयंकर लड़ाके। भुज सार भार भुअ=लोहे के समान बलिष्ठ भुजदंड, भुजाओं पर ही लोहा लेने का भार। धरधमंकि=पृथ्वी डगमगाने लगी। भजि शेस=शेष नाग भयभीत हुआ। लुप्पि=लोप हो गया, छिप गया। उल्लटि=उलटकर, उमड़ कर। रुक्कि=रुक कर। राह=मार्ग। अड्डौ रहिय=अड़ा रहा, डट गया। तिहि घरिय=उस समय। इहिविधि=इस प्रकार।

अर्थः—(१) गजनी में सूचना पाकर शहाबुद्दीन ने भी चढ़ाई कर दी। (२) (उसकी सेना में) खुरासान, मुलतान, कास तथा काबुल के सच्चे (ठेठ) मीर (योद्धा) थे। (३) वे (सैनिक) संग्राम में (जुटने पर) भयंकर रूप से युद्ध करने वाले लड़ाके थे; उनकी भुजाओं पर ही पृथ्वी का (लोहा लेने का) भार था, अथवा पृथ्वी पर उनकी भुजायें

लोहे के समान बलिष्ठ और भारी थीं। (४) (गौरी की उस विशाल वाहिनी को देखकर) पृथ्वी डगमगाने लगी, (धमकने लगी) शेषनाग भय से कांपने लगा, आकाश में सूर्य (सैन्य पद-धूलि से) लुप्त होगया और अंधकार (रैन) छा गया। (५) शाह को सेना का प्रवाह सिंधु के समान उमड़ पड़ा। और वह सेना पृथ्वीराज के मार्ग में अड़कर स्थित होगई (मार्ग रोक लिया)। (६) उस समय कवि चंद ने पृथ्वीराज से इस प्रकार वचन (कथन) कहे; अर्थात् गौरी के आगमन की सूचना दी।

विशेष:—'उल्लटि प्रवाह मनु सिंधु सरि' पाठान्तर होने पर अर्थ इस प्रकार होगा, 'मानो समुद्र और नदियों का प्रवाह ही उलट कर आगया हो।' सैन्य की विशालता और तीव्र गति को समुद्र-प्रवाह के समान माना गया है।

—कवित्त—

निकट नगर जब जांनि जाय, वर विंद उभय भय।१।
समुद सिषर घन नद्द दंद, दुहुँ ओर घोर गय।२।
अगिवानिय अगिवान कुंअर, बनि बनि हय सज्जति।३।
दिष्षन को त्रिय सबनि, गोष छाजन चढ़ि रज्जति।४।
बिलषि अवास कूंवरि बदन, मनौ राहु छाया सुरत।५।
झंषति गवष्षि पल पल पलकि, दिषन पंथ दिल्लीसुपति।६।
॥३१॥

शब्दार्थ:—जांनि=बारात, जनेति। नद्द=नाद। दंद=दुन्दुभि। घोर गय=तेज गति से। अगवानिय=स्वागत सत्कार के हेतु। (राजस्थान में कन्या पक्ष वालों की ओर से आगे बढ़कर बारात का जो स्वागत सत्कार किया जाता है उसे 'अगवानी' करना कहते है।)

बनि बनि=विविध प्रकार से। दिष्षन=देखने को। गोष=(सं०गवाक्ष) झरोखे। अवास=आवास, महल। सुरत=सुन्दर चन्द्रमा के समान मुख। (इधर सूरत का तात्पर्य 'शक्ल' अथवा मुख से है, न कि प्रेम या आच्छादित, जैसा कि कुछ टीकाकारों ने किया है।) झंषति गवछ्षि=झरोखे से झांकती है (देखती है)। पलकि=पलकें, नेत्र।

अर्थ:—(१) नगर के निकट (जब) कुमुदमणि की बारात पहुंची, (तब) दोनों ही वर (कुमुदमणि और पृथ्वीराज) वहां पहुंचे, अर्थात् दोनों वरों का प्रवेश समुद्र-शिखिर में एक साथ ही हुआ। (२) समुद्र-शिखिर में दोनों ओर से (वर पक्ष तथा कन्या पक्ष) दुन्दुभियों का तुमुल नाद बड़ी घनघोर गति से होने लगा। (३) बारात का आगे बढ़ कर स्वागत-सत्कार करने वाले राजकुमार भांति-भांति से अपने अश्वों को सज्जित करने लगे। (४) बारात को देखने के लिए सब नगर वधुएँ (स्त्रियां) गवाक्षों और अटारियों (छज्जों) पर चढ़ी हुई सुशोभित होरही थीं। (५) राजकुमारी पद्मावती अपने महल में विलखने लगी। विषाद के कारण उसका मुख कमल इस प्रकार मलीन हो गया था, मानों उस पर राहु की छाया पड़ रही हो। (६) पल पल में वह अपने नेत्रों से महल में से झांक झांक कर दिल्ली के अधिपति पृथ्वीराज का मार्ग देख रही थी।

—पद्धरी (पड्ढरी)—

दिष्षतं पंथ दिल्ली दिसाँन, सुष भयो सुक जब मिल्यौ आन ।१।
संदेस सुनत आनंद नैन, उमगीय बाल मनमथ्थ सैन ।२।
तन चिहुट चीर डार्‌यो उतारि,मज्जन मयंक नवसत सिंगार ।३।
भूषन मंगाय नष-सिष अनूप, सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ।४।
सोब्रन्न थार मोतिन भराय, झलहल करंत दीपक जराय ।५।

संगहू सषिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय जेम लज्जत मराल ।६
पूजियइ गवरि संकर मनाय, दच्छिनइ अंग करि लगिय पाय ।७
फिर देषि देषि प्रथिराज राज, हंस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज ।८
कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय, लै चल्यौ निपती दिल्लो सुराय।६
भइ षबरि नगर बाहिर सुनाय, पदमावतीय हरिलीय जाय ।१०
बाजो सुबंब हय गय पलाँन, दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसाँन ।११
तुम्ह लेहु-लेहु मुष जंपि जोध, हन्नाह सूर सब पहिरि क्रोध ।१२
अग्गे जु राज प्रथिराज भूप, पच्छे सु भयो सब सेन रूप ।१३।
पहुँचे सुजाय त्तो तुरंग, भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग ।१४।
उलटी जु राज प्रथिराज बाग, थकि सूर गगन धर धसत नाग ।१५।
सामंत सूर सब काल रूप, गहि लोह छोह बाहै सुभूप ।१६।
कम्माँन बाँन छुट्टहि अपार, लागंत लोह इमि सार धार ।१७।
घमसान घांन सब बीर षेत, घन स्रोन अरु रकत रेत ।१८।
मारे बरात के जोध जोह, परि रुंड मुंड अरि षेत सोह ।१६।
॥१२॥

शब्दार्थ:—दिसांन=दिशा की ओर । सुष=सुख । मनमथ्य=(मन्मथ) कामदेव । सेन=संकेत। चिहुट=(चिहक) मलिन। चीर=वस्त्र । मज्जन=स्नान । मयंक= (सं० मृगांक) चन्द्र के समान सुन्दर अंग वाली, पद्मावती । नवसत सिंगार=सोलह शृङ्गार । सोअन्न=सुवर्ण । थार=थाल । झलहल= झिलमिल । जेम=ज्यों । दच्छिनइ=प्रदक्षिणा करके । मुद्ध=मुग्ध होकर मोहित । पट्ट=वस्त्र । षबरि=खबर, समाचार । हरि लीय=हरण करके सुबंब=बिगुल । पलांन= (सं० पल्याण) काठी । जंपि= (सं० जल्प,) कहना । जोध=योद्धा । हन्नाह= (सं० सन्नाह), कवच । तत्ते=तीव्र,

तेज गति वाले । उलटि=मोड़ना, घुमा कर । बाग=घोड़े की लगाम । लोह=लोहा । गहि लोह=तलवार लेकर । छोह=उत्साह । बाहै=चलाता है । सार धार=अजस्त्र धारा, तलवार की धार । घांन=(सं० घन=समूह) प्रहार । घन=शरीर (पिंड) घना, अधिक । स्त्रोन=शोण, रक्त, रुधिर । रकत=रक्त, लाल रंग की । जोह=जोध कर, खोजकर, देखकर । षेत=(सं० क्षेत्र) रणक्षेत्र ।

अर्थ:—(१) पद्मावती दिल्ली दिशा की ओर का मार्ग देखने लगी इतने में शुक के आ जाने से उसको महान सुख प्राप्त हुआ । (२) (शुक से पृथ्वीराज के आगमन का) संदेश सुनकर वह पद्मावती बाला आनन्द से उमंगित होगई और उसके नेत्रों में प्रेम (कामदेव का संकेत) लहराने लगा । (अथवा, संदेश सुनकर उसके नेत्रों में आनन्द लहराने लगा और वह कामदेव रूपी पृथ्वीराज के आगमन का संकेत पाकर अत्यधिक उमंगित हुई ।) (३) उस पद्मावती ने अपने शरीर का मलीन वस्त्र उतार कर फेंक दिया, तथा स्नानादि करके उसने अपने आपको सोलह शृङ्गार से सजाया, (अथवा, स्नान करके चन्द्रमा के समान श्वेत नवीन वस्त्र धारण किये ।) (४) आभूषण मंगाकर उसने अपना अनुपम नख-शिख रूप ऐसा सुन्दर बनाया, मानों कामदेव रूपी नरेश ने अपनी सेना सजाई हो । (५) उसने स्वर्ण के थाल में मोती भर कर उसमें झिलमिलाते हुए दीपक जलाए । (अथवा. स्वर्ण के थाल में भरे हुए मोती ऐसे प्रतीत होते थे मानो ज्वलंत दीपक झिलमिला रहे हों ।) (६) अपने साथ में एक सहस्त्र बाल-सहचरियों को लेकर. वह रुक्मिणी के समान, हंस की गति को भी लज्जित करने वाली चाल से चली । (७) (गौरी-शंकर के मंदिर में पहुंच कर ) उसने गौरी (पार्वती) का पूजन किया और शिव की मनौती मनाई. तथा प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करके (नत मस्तक हुई) उनके चरणों में प्रणाम किया । (८) फिर प्रिय पृथ्वीराज की ओर (बार बार) अनुरक्त नेत्रों से अविरल देखती व

मंद मंद मुस्कराती हुई उस पर मोहित होकर उस प्रेम-लुब्धा ने अपने मुख पर वस्त्र रख लिया (लज्जा के कारण मुख पर घूंघट डाल लिया) (९) पृथ्वीराज ने उसका हाथ पकड़ कर उसे घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया और दिल्ली (राज्य) की ओर ले चले। (१०) नगर में बाहर-भीतर यह समाचार सुनाई पड़ा कि पद्मावती को (कोई) हर कर लिए जाता है। (११) युद्ध का बिगुल बज उठा, हाथी और घोड़ों पर पलान कस कर सुसज्जित योद्धा दशों दिशाओं में दौड़ पड़े। (१२) सब शूरवीर योद्धा कवच धारण किये हुए क्रोधावेश में 'पकड़ो, पकड़ो' आदि शब्द मुख से कहने लगे। (१३) आगे आगे उस पद्मावती के प्रिय पृथ्वीराज नरेश थे और पीछे उनकी सम्पूर्ण सेना थी। (१४) (पृथ्वीराज की सेना के निकट) समस्त तीव्र गति वाले अश्व पहुंच गये और ससैन्य सब राजा घमासान युद्ध करते हुए (युद्धस्थल में) परस्पर भिड़ गये, (अथवा, सब राजा परस्पर भिड़ गए और घमासान युद्ध छिड़ गया।) (१५) पृथ्वीराज नें ज्यों ही अपने घोड़े की बागडोर युद्ध के हेतु मोड़ी (अर्थात् ज्योंही वह युद्ध के लिए कटिबद्ध हुआ) त्योंही सूर्य गगन-मंडल में स्थिर होगया, (भय के कारण, या युद्ध का रंग देखनें के लिए) और शेषनाग पर स्थित पृथ्वी धंसनें लगी (अथवा पृथ्वी में पर्वत धंसने लगे या धरनी शेषनाग सहित धंसने लगी) (१६) पृथ्वीराज के जितने भी वीर सामन्त थे वे सब महाकाल (यमराज) के समान भयंकर प्रतीत हो रहे थे और वे उत्साह में भर कर शत्रु पक्ष के राजाओं पर तलवार चला रहे थे। (१७) उनके धनुष से असंख्य तीर छूट रहे थे, तथा वर्षा के जल की अजस्त्र धारा के समान शस्त्रों की झड़ी लगी हुई थी। (१८) उस घमासान युद्ध (के भीषण प्रहार) में सब सूर सामन्त वीर-गति को प्राप्त हुए, उनके शरीर से अधिक रक्त बहने के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी रक्त रंजित होगई। (१९) उन्होंनें (पृथ्वीराज कें सामन्तों ने) बारात पक्ष के योद्धाओं को खोज खोज कर मार गिराया, उनके रुंड-मुण्ड से युद्ध क्षेत्र सुशोभित-सा होगया।

—दूहा—

परे रहत रिन षेत अरि, करि दिल्लिय मुष रुष्ष ।१।
जीति चल्यौ,प्रथिराज रिन,सकल सूर भय सुष्ष ।२।।३३।।

शब्दार्थ:—रिनषेत=रणक्षेत्र । रुष्ष=रुख (दिशा) । सुष्ष=सुख ।

अर्थ:—(१) शत्रु पक्ष के वीर रणक्षेत्र में खेत रहे (मृत्यु को प्राप्त हुए ) । पृथ्वीराज ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया (मुख घुमाया) । (२) पृथ्वीराज ने युद्ध में विजय प्राप्त की, और समस्त शूरवीरों को सुख प्राप्त हुआ ।

—दूहा—

पद्मावति इमि लै चल्यौ, हरषि राज प्रथिराज ।१।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ।२।।३४।।

अर्थ:—इस प्रकार पृथ्वीराज नरेश प्रसन्न चित्त होकर पद्मावती को लेकर चले । (२) इतने ही में उनको बादशाह के आने का समाचार मिला, अथवा इतने में ही आगे बढ़ने पर बादशाह शाहबुद्दीन की ललकार (आवाज) सुनाई पड़ी ।

—कवित्त—

भई जु आनि अवाज, भाय साहाबदीन सुर ।१।
आज गहौं प्रथिराज, बोल बुल्लंत गजत धुर ।२।
क्रोध जोध जोधा अनंत, करिय पंती अनि गज्जिय ।३।
बांन नालि हथनालि,तुपक तीरह स्त्रव सज्जिय ।४।
पव्वै पहार मनों सार के, भिरि भुजाँन गजनेस बल ।५।

आए हकरि हंकारि करि, षुरासान मुलतान दल ।६।२५।।

शब्दार्थः-सुर=(सं० सुर=असुर) यवन, शूरवीर। गहों=पकडूंगा, बंदी बनाऊंगा। बुल्लंत=बुलंद, तेज आवाज। गजत=गर्जन कर, गाज कर। धुर=(सं० ध्रुव) दृढ़। जोध जोधा=वीर योद्धा। अनि=सेना। नालि=तोप। हथनालि=बंदूक (हाथ की तोप अर्थात बंदूक) तुपक=छोटी तोप, कड़ाबोन। स्त्राव=(सं० सर्व, अ० सब्ब) सब। पव्वै=(सं० पवि) बिजली, वज्र, पर्वत। पहार=प्रहार, पहाड़, पर्वत। सार=तलवार (लोह) हकरि=बढ़ते हुए। हंकार करि=हुंकार करते हुए, ललकारते हुए।

अर्थः—(१) उसी समय शहाबुद्दीन गौरी की ललकार सुनाई पड़ी। (२) कि 'आज मैं पृथ्वीराज को पकड़ कर बंदी बनाऊंगा', इस प्रकार उसने दृढ़ बुलन्द स्वर में गर्जना की। (३) क्रोध से युक्त अनन्त वीर योद्धाओं को उसने पंक्ति बद्ध किया और वह सैन्य समूह भी (क्रोधाभिभूत हो) गरजने लगा। (५) उन्होंने तीर, तोप, बन्दूक और तुपक आदि सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र सज्जित कर लिए। (अर्थात अस्त्र-शस्त्रों से वे सब सुसज्जित हो गए।) (५) गजनी के अधिपति (शाहबुद्दीन) के बाहुबल पर वे पृथ्वीराज की सेना से) भिड़ गए, मानों पर्वत पर तलवारों का वज्र गिरा हो, (या प्रहार हुआ हो) खुरासानी और मुलतानी वीरों का समह हुंकार करता हुआ आगे बढ़ आया।

विशेषः—'पव्वं पहार मनु सार के' का अर्थ कुछ टीकाकारों नें इस प्रकार भी किया है—सेना एकत्रित होकर अपनी भुजाओं के कारण ऐसी मालूम पड़ती थी मानो लोहे के पहाड़ उड़ रहे हों तथा, वीर प्रहार करते हुए लोहे के पर्वत से दृढ़ थे।

—भुजंग प्रयात—

षुरासान मुलतान षंधार मीरं; बलष स्यो बलं तेग अच्चूक तीरं।१।
रुहंगी फिरंगी हलंबी समानो; ठटी टह बल्लोच ढालं निसानो।२।
मँजारी चषी-मुष्ष जबुंक्क लारी; हजारी हजारी हुकै जोध भारी।३।
तिनं पष्षरं पीठ हय जीन सालं; फिरंगी कती पाससुकलात लालं।४।
तहाँ बाघ बाघं मरुरी रिछोरी; घनं सार समूह अरु चौंर भोरी।५।
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी; तुरक्की महावाँन कम्माँन बाजी।६।
इसे असिव असवार अग्गोल गोलं; भिरे भूप जेते सुतत्ते अमोलं।७।
तिन मद्धि सुलतांन साहाब आयं; इसे रुप सौं फौज बरनाय जायं।८।
तिनं घेरियं राज प्रथिराज राजं;चिहौं ओर घनघोर नीसाँन बाजं।९।
।।३६।।

शब्दार्थ:—षुरासान, मुलतान, षंधार, बलष=यवन देश। संहगी, फिरंगी, हलबी और बलूची आदि जातियाँ। ठटी ठह=भारी सेना के ठट्ट। मंजारी चषी=(सं. मार्जारी चक्षु) बिल्ली की सी आंख वाले। मुष्ष=मुख, मुँह। जंबुक्क=सियार। लारी=लोमड़ी। पष्षरं=मुसलमान जाति। सालं=अलंकृत, कसे हुए। कती=कटारी। घनं-सार=तलवार से युक्त। असिव=अश्व, घोड़े। अग्गोल गोलं=आगे की पंक्ति में। सुतत्ते-अमोल=उपस्थित योद्धाओं का समूह।

अर्थ:—(१) गौरी की सेना में खुरासानी, मुल्तानी और कंधारी मुसलमान हैं; साथ ही अचूक तीर और तलवार के वीर प्रहारी बलख के यवन हैं। (२) रुहंगी, फिरंगी, हलम्बी आदि जातियों के झुंड के झुंड जुड़े हुए हैं जिनके पास बिलोची ढालें व निसान आदि हैं।

(३) इस सेना में इसके साथ ही, बिल्ली सी आंख वाले, गीदड़ और लोमड़ी के समान मुख वाले, हजारों सैनिकों से एक साथ ही अकेले भिड़ने वाले कई भयानक योद्धा हैं। (४) घोड़ों पर जोण कसे हुए पष्षर जाति के मुसलमान हैं; उनके पास विलायती कटारी और कलात देश की तोपें हैं। (५) सेना में कहीं बाघ और रीछ की (मुड़ी हुई) आकार वाली, लोह तलवारों से युक्त, बलशाली वीरों का समूह है। (६) एराक्की और अरब्बी जाति (एराक्की और अरबी जाति के वीर तेज घोड़ों पर सवार हैं) के तेज घोड़े उनके पास हैं तथा महान धनुर्धारी अश्वारोही तुर्क भी हैं। (७) ऐसे वीर अश्वारोही सेना की अग्रिम पंक्ति में स्थित हैं। (८) उस सेना के मध्य में शाहाबुद्दीन गौरी उपस्थित है, इस प्रकार कवि ने गोरी की सेना का वर्णन किया है। (९) उन्होंने पृथ्वीराज को घेर लिया और चारों ओर युद्ध के घनघोर बाजे बजने लगे।

विशेषः—प्रस्तुत पद में कवि ने गोरी की सेना की विशाल वाहिनी का चित्र खींचा है।

एक टीकाकार ने चतुर्थ, पंचम, षष्ठ व सप्तम पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार दिया है—"उनके घोड़ों की पीठ पर पाखर पड़े हैं और जीन शोभित हैं। विलायती छुरे, फ़न्दे और सुन्दर किलात देश की तोपें भी उनके पास हैं। घोड़ों की बागडोर में मोतियों की लड़ी मरोड़ कर बांधी हुई हैं; उनपर बहुत अधिक लौहभार, चंवर और झोले भी रखे हुए हैं। वहां अत्यन्त उग्र एराकी, अरबी, पटी, ताजी तथा तुर्की घोड़े और धनुषबाण भी हैं।"

—कवित्त—

**बज्जिय घोर निसांन, राँन चौहान चहौं दिसि।१।**

सकैल सूर सामंत समरि, बल जंत्र मंत्र तिसि ।२।
उट्ठि राज प्रथिराज, बाग मनु लग्ग बीर नट ।३।
कढत तेग मनु बेग, लगत मनु बीज्ज झट्ट घट ।४।
थकि रहे सूर कौतुक गिगन,
रगन मगन भई श्रोन धर ।५।
हदि हरषि वीर जग्गे हुलसि,
हुरेउ रंग नव रत्त बर ।६।।३७।।

शब्दार्थ:—रांन=राजा। समरि=स्मरण करके। बीज्जब=बिजली। घट=घटा, शरीर। रगन मगन=रक्त से तर, लथपथ। हदि=हृदय।

अर्थ:—(१) राजा पृथ्वीराज के पक्ष के, नगाड़े भी घनघोर शब्द करते हुए चारों दिशाओं में, बजने लगे। (२) समस्त शूरवीर सामन्तों ने उनके जन्म-मन्त्रादि के इष्ट का स्मरण किया। (३) उसी समय महाराज पृथ्वीराज ने घोड़े की बाग (लगाम) हाथ में उठाई; उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई चतुर नट (वीर रस रूपी रस्सी लेकर) कोई करतब दिखाने को तत्पर हुआ हो। (४) उन्होंने (पृथ्वीराज ने) मन के तीव्र वेग के समान (तीव्रता से) अपनी तलवार निकाली, (तलवार को लिए हुए पृथ्वीराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे) मानों घटाओं में से विद्युत चमक उठी हो। (अथवा वे तलवार इतने वेग से चला रहे थे कि शत्रु दल रूपी घनघटा पर बिजली के समान चमक उठती हो) ) (५) यह अद्भुत कौतुक देखकर सूर्य भी गगन में स्थिर रह गये (ठगे रह गये) रक्त से पृथ्वी लथपथ होगई। (६) वीर हृदय में प्रसन्न होकर उत्साहित हुए, और उनके अंगों में नवीन रक्त का संचरण होने लगा।

विशेष:—कविराज मोहनसिंह ने (पाठा०) 'थकि रहे सूर कौतिग गगन' का अर्थ–'उस युद्ध दृश्य को देखते हुए बहादुर थक से गये (स्तम्भित होगये), दिया है। इसी प्रकार 'हर हरखि वीर जग्गे हुलस, हूर बरिग नव रत्त वर' (पाठान्तर देकर) यह अर्थ किया है–'शिव प्रसन्न हुए, बावन ही वीर जाग्रत होकर हुलस उठे और हूरें रक्तरंजित नवीन वरों का वरण करने लगी।'

—दूहा—

हुरेउ रंग नव रत्त-वर, भयो जुद्ध ग्रति चित्त ।१।
निस बासुर समुझि न परत,न को हार नह जित्त ।२।।२८।।

अर्थ:—(१) (युद्ध काल में) वीरों के अंगों में नवीन रक्त का संचरण होने लगा, युद्ध बड़े उत्साह से हुआ। (२) (शस्त्रों के आच्छादन के कारण) दिन और रात्रि का बोध भी नहीं हो रहा था; और न यही प्रतीत होता था कि किस पक्ष की पराजय हुई और किसकी वजय।

विशेष:—'निसबासुर समझिन परत' के लाक्षणिक संकेत द्वारा कवि ने युद्ध की भयानकता का संकेत दे दिया है। दोनों पक्ष उत्साहित होकर युद्ध-क्रीड़ा में रत थे तथा जय-पराजय की आशा-आकांक्षाओं में घमासान युद्ध चल रहा था।

—कवित्त—

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहइ सूरवर ।१।
धर उप्पर भर परत, करत ग्रति जुद्ध महाभर ।२।
कहीं कमंध कहौं मथ्थ, कहौं कर चरन ग्रंतरुरि ।३।

कहौं कंध बहि तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उरि ।४।
कहौं दंत-मंत हय षुर षुपरि,
कुंभ भ्रूसुंडह रूड़ सब ।५।
हिंदवांन रान भय भांन मुख,
गहिय तेग चहुआंन जब ॥६॥१९॥

शब्दार्थ:—धर = धरती, पृथ्वी । भर = भट्ट, योद्धा । कमंध = (सं० कबंध) रूंड, धड़ । मथ्थ = माथा, मूंड । अंत = अंतड़ी, आंतें । रूरि = रुड़कती हुई, बिखरती हुई । उरि = (सं० उरस्) उर, वक्षस्थल । कुंभ = कुंभस्थल । भ्रूसुंडह = सूंड ।

अर्थ:—(१) (युद्ध में) दोनों पक्ष के बीर न पराजय मानते थे और न कोई जय ही पाता था (दोनों पक्ष के वीर इतने प्रबल थे कि जय-पराजय के निर्देशक चिह्न व्यक्त ही नहीं हो रहे थे)। और शूरवीर रोकने पर भी नहीं रुकते थे अथवा युद्ध में लड़े बिना उनसे रहा भी नहीं जाता था। (२) महाराज पृथ्वीराज अति घमासान (भयंकर) युद्ध कर रहे थे, उनके प्रहार से योद्धागण भूमि पर पड़ रहे थे। (३) युद्ध भूमि में वीरों के कहीं २ पर रुंड-मुंड पड़ने लगे और कही २ पर हाथ, पैर और आंतें यत्र-तत्र बिखरने लगी। (४) कहीं पर तलवार कन्धे को काटकर पार होगई, और कहीं सिर से टकराकर भीतर होती हुई वक्षस्थल को पार कर गई (५) पृथ्वीराज रूपी सिंह के भीषण प्रहार के कारण मस्त हाथियों के दांत और घोड़ों के खर और खोपड़ियाँ हाथियों के कुंभ स्थल और सूंड़ें भूलुंठित होकर इधर-उधर बिखरने लगी। (६) हिन्दुओं के राजा चौहान (पृथ्वीराज) ने जब तलवार से इस प्रकार के भीषण प्रहार शत्रुओं पर किए तब (भयानक युद्ध करने के कारण युद्धोत्साह से) उनका मुख-मण्डल सूर्य के समान दीप्तिमान और तेजोमय हो रहा था।

विशेष:—युद्ध काल की विभीषिका का सुन्दर चित्रण इस पद में

हुआ है। 'बेलीकार' ने युद्ध वर्षा रूपक में इसी प्रकार वीर रस का श्रोत बहाया है:—

"हथनलि हवाई कुहक बाण हुवि, होई वीर हक गैगहण।
सिलहाँ ऊपरि लोल लोह सर, मेंह बूँद माहे महण ॥
कलकलिया कुंत किरण कलिऊकलि, वरजितविसिख विवरजित वाउ।
धड़ि धड़ि धबकि धार धारुजल, सिहरि सिहरि समखै सिलाउ ॥"

श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने 'प्रताप की तलवार' में युद्ध का भीषण रूप वर्णन किया है:—

"कल कल बहती थी रण-गङ्गा, अरि दल को डूब नहाने को;
तलवार वीर की नाव बनी, चट पट उस पार लगाने को ॥
बैरी दल की ललकार गिरी, वह नागिन सी फुफकार गिरी।
था शोर मौत से बचो, बचो, तलवार गिरी तलवार गिरी ॥
क्षण इधर गई, क्षण उधर गई, क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई;
था प्रलय चमकती जिधर गई, क्षण शोर होगया किधर गई।"

—छंद भुजंगी—

गहि तेग चहुआंन हिंदवांन रानं; गज जूथ परि कोप केहरि समानं।१।
करे रूंड मुंड करि कुंभ फारे; बरं सूर सामंत हुंकि गर्ज भारे।२।
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे; मंद तजियं लाज ऊमंग मग्गे।३।
दौरि गज अंध चहुआंन केरो; घेरियं गिरद्दं चिहौं चक्क फेरो।४।
गिरद्दं उड़ी भांन अंधार रैनं; गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं।५।
सिरं नाय कम्मांन प्रथिराज राजं; पकरिये साह जिम कुलिग बाजं।६।
लै चल्यौ सिताबी करी फारि फौजं; परें मीर सै पंच तहं षेत चोजं।७।
रजंपुत्त पंच्चास जुज्झे अमोरं; बजै जीत के नद्द नीसांन घोरं।८।
॥४०॥

शब्दार्थः—कलप = कलपना, व्याकुल होना। मंद = क्षीण। तंजियं = त्याग कर। ऊमंग मग्गे = मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए। गिरद्दं = (फा० धूल) मिट्टी, गर्द। चक्क = (सं चक्र) चक्कर, मंडलाकार। सूधि = सुधी, चेतना। सिरं नाय = (नाय = नावणों, डालना) गले में डालकर। कुलिंग = गौरैया पक्षी। सिताबी = (फा०) शीघ्रता से। चौजं = चुने हुए; फारसी में चौजं का अर्थ 'मरा हुआ कबूतर' होता है। अमोरं = नहीं मुड़ने वाले, अमूल्य।

अर्थः—(१) हिन्दुओं के अधिपति राजा पृथ्वीराज तलवार लेकर शत्रुओं के यूथ में इस प्रकार कूद पड़े जिस प्रकार क्रोधित सिंह हाथियों के समूह में कूद पड़ता है। (२) उन्होंनें अपनी तलवार से शत्रुओं के रुंड-मुंड अलग-अलग कर दिये और हाथियों के कुंभस्थल फाड़ दिये (विदीर्ण कर दिये), उसके (पृथ्वीराज के) श्रेष्ठ शूरवीर सामन्त बारबार हुंकारते और गंभीर गर्जना करते थे। (३) शत्रुओं पर इस प्रकार पृथ्वीराज के वीर योद्धाओं द्वारा मार पड़ने पर, शत्रु पक्ष के वीर चिल्लाते और चीत्कार करते हुए व्याकुल होकर भाग खड़े हुए; उनमें युद्ध का उत्साह मंद पड़ गया तथा लज्जा का त्याग कर (युद्ध से भागने पर वीर को लज्जा अनुभव होती है पर उन्होंने उसे भी छोड़ दिया) वे (रण से विमुख होकर) घर के मार्ग की ओर भाग जाने में प्रवृत्त हुए। (४) पृथ्वीराज चौहान का हाथी अंधे की भांति दौड़ा और वह मंडलाकार घुमाया जाने लगा जिससे चारों ओर धूल (गर्द) घिर गई (छा गई)। (५) अत्यधिक धूल के उड़ने से सूर्य छिप गया जिससे रात्रि के समान अन्धकार छागया; अन्धकार छाजाने के कारण (शत्रुओं) की चेतना लुप्त होगई और उनको नेत्रों से तनिक भी नहीं सूझ (दिखलाई) पड़ रहा था। (६) उसी समय पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गौरी के गले में धनुष डालकर इस सरलता से पकड़ लिया जैसे कि बाज किसी साधारण गौरैया पक्षी को पकड़ लेता है। (७) शत्रुओं की

वाहिनी (फौज) को चीरकर (नष्ट भ्रष्ट करके) शहाबुद्दीन को शीघ्रता से बन्दी बनाकर ले चले। इस युद्ध रूपी क्षेत्र में बादशाह के पांच सौ वीर मृत्यु को प्राप्त हुए (अथवा वे युद्ध भूमि में मरे हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानों किसी खेत में बाज द्वारा मारे हुए कबूतर मरे पड़े हों)।

विशेष:—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की सुन्दर अभिव्यक्ति वीर-रस से परिपूर्ण इस पद में बड़े ही अनूठे ढंग से की गई है। शब्द-योजना, सजीव चित्रण और स्वाभाविक वर्णन के लिए यह पद प्रसिद्ध है।

'बेलीकार' का निम्न पद अपने ओजपूर्ण वर्णन की दृष्टि से पठनीय है:—

"रिण अंगणि तेणि रुहिर रलतलिया, घणा हाथ हूँ पड़ै घणा।
ऊंधा पत्र बुद्बद जल-प्राकृति, तरि चालै जोगिणी तणा॥
घटि घटि घण घाउ घाइ घाइ रत घण, ऊंच छिछ उछलै अति।
पिड़ि नीमनौ कि खेत्र प्रवाली, सिरा हंस नीसरै सति॥"

—दूहा—

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग।१।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गङ्ग।२॥४१॥

अर्थ:—पृथ्वीराज को इस युद्ध में विजय प्राप्त हुई, उसने बादशाह को पकड़ कर (बंदी बनाकर) अपने साथ में लिया। (२) फिर उसने दिल्ली की दिशा की ओर प्रस्थान किया तथा मार्ग में पहाड़ी गङ्गा को पार किया।

—दूहा—

बरि गौरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतांन।१।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथीराज चौहान।२॥४२॥

शब्दार्थ:—बरि = वरण करके। गहि = पकड़ कर।

अर्थ—(१) पद्मावती सुन्दरी को वरण करके और बादशाह शहाबुद्दीन गौरी को पकड़ कर; (२) पृथ्वीराज चौहान दिल्ली के निकट पहुंचा।

विशेष:—कुछ टीकाकारों ने 'चत्रभुजा चहुंआन' (पाठान्तर) का अर्थ इस प्रकार किया है—

(१) "चार भुजा वाला (अनल) चहुंवान का वंशज पृथ्वीराज (२) पृथ्वीराज चतुर्भुजा (चतुर्भुजा देवी का स्थान-विशेष) के निकट पहुंचा।

—कवित्त—

बोलि विप्र सोधे लगन्न, सुभ घरी परट्ठिय ।१।
हर बासंह मंड़प बनाय, करि भांवरि गंठिय ।२।
ब्रह्म वेद उच्चरहिं, होम चौंरी जु पत्ति वर ।३।
पद्मावती दुलहिन अनूप,दुलह प्रथिराज राज नर ।४।
डंड्यो साह साहाबदी, अट्ठ सहस हैबर सुबर ।५।
दै दाँन मांन षटभेष को,चढ़े राज द्रग्गाह जुर।६।।४३।।

शब्दार्थ:—सोधे लगन्न = विवाह का लगन निकलवाया। परट्ठिय = प्रतिष्ठित की, निश्चित की। हर बासंह = हरे बांस। भांवरि = फेरे, विवाह-वेदिका की प्रदक्षिणा। गंठिय = गठ जोड़ा, ग्रन्थिबंधन। चौंरी = विवाह की यज्ञ-वेदी। डंड्यो = दंडित किया। षटभेख = छः भेष वाले; यथा-योगी, यति, संन्यासी, जंगम, चारण और ब्राह्मण; शुभ अवसर पर इनको दान देना श्रेष्ठ माना जाता है। द्रग्गाह = (अ० = द्रग्ग) दुर्ग।

अर्थः—(१) (तदन्तर पृथ्वीराज ने) ब्राह्मणों को बुलाकर विवाह का लग्न पूछा, और ब्राह्मणों ने शुभ घड़ी निश्चित की। (२) हरे बाँसों से विवाह का लग्न-मण्डप बनाया गया, फिर ग्रन्थि-बंधन करके भांवरे पड़ी। (६) उस समय यज्ञ-वेदी (चँउरी) के निकट, जहाँ वर की प्राप्ति होती है (अथवा वर के पहुंचने पर) ब्राह्मण वेदों का उच्चारण कर रहे थे। (४) वहां वधू के रूप में अनुपम सुन्दरी पद्मावती तथा वर के रूप में नर श्रेष्ठ पृथ्वीराज सुशोभित हो रहे थे। (इस प्रकार लग्न-मण्डप के नीचे, अग्नि की साक्षी में, वेद मन्त्रों की पवित्र ध्वनि का श्रवण करते हुए दोनों का विवाह कार्य सम्पन्न हुआ)।

(५) (विवाह के पश्चात्) उस नर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गौरी को आठ हजार श्रेष्ठ सुन्दर घोड़े देने का दंड दिया। फिर बट-वेशियों को यथोचित दान और आदर देकर अपने सामन्तों सहित दुर्ग पर चढ़ गए।

—कवित्त—

चढिय राज प्रथिराज, छांड़ि साहाबदीन सुर ।१।
त्रिपत सूर सामंत, बजत निसांन गजत धुर ।२।
चंद-बदनी म्रिग नैनी, कलस ले सिर सनमुष्ष जुष ।३।
कनक थार आरित बनाय; मोतिन बंधाय सुष ।४।
मंडल मयंक वर नार सब, आनंद कंठह गाइयउ ।५।
ढोरंत चंवर किक्कर करहिं, मुकुट सीस तिक जुदियाउ ।६।
॥४४॥

शब्दार्थः—त्रिपत = तृप्त, संतुष्ट। जष = जुड़ी, एकत्रित हुई। सुष = सुख से, उल्लसित होकर। किक्कर = (सं० किंकर) सेवक। तिक = तिलक।

अर्थ:—(१) यवन नरेश शहाबुद्दीन को मुक्त करके पृथ्वीराज दुर्ग पर चढ़ गए। (२) समस्त शूरवीर सामन्तगण संतुष्ट हुए, (इस शुभ अवसर पर) नगारे मङ्गल-सूचक नाद करते हुए बजने लगे। (३) (पृथ्वीराज पद्मावती का स्वागत करने के लिए) चन्द्रमुखी-मृगनयनी सुहागिनी स्त्रियां मंगलकलस लेकर उनके सम्मुख आई। (४) स्वर्ण थाल में सामग्री सजा कर उनकी आरती की गई और उल्लसित होकर मोती न्यौछावर (उछाल कर) करने लगी। (अर्थात् अक्षत के स्थान पर मोती उछालकर 'वारने' लेने लगी।) (५) मयङ्कमुखी श्रेष्ठ सुन्दरियों का समूह (आनंदित होकर) मंगल-गीत गाने लगा। (६) उनके तिलक लगाया गया, मस्तक पर कान्ति युक्त मुकुट धारण कराया गया; सेवक-गण अपने हाथों से उनपर चंवर ढुलाने लगे।

—दूहा—

**चढे राज द्रुग्गह निपत, सुंमत राज प्रथिराज ।१।**
**अति अनंद आनंद सैं, हिंदवान सिरताज ।२१४५।।**

शब्दार्थ:—सुंमत=परम बुद्धीमान। अनंद=अत्यधिक, अनन्त।

अर्थ:—हिन्दुओं के सिरमौर, परम बद्धिमान नरेश राज राजेश्वर महाराज पृथ्वीराज आनन्द में परम उल्लसित होकर दुर्ग(राज-प्रासाद) में प्रवेश होगये।

इति श्री कवि चन्दविरचिते प्रथिराजरासा के श्री प्रिथिराज समुद सिषरगढ़ पद्मावती पांणिग्रहणं जुद्ध पश्चात् पातिसाह प्रिथीराज जुद्धं श्री प्रिथीराज जुद्ध विजयपाति साहग्रहनं मोषनं नाम विंशति प्रस्ताव संपूर्णम् ।।२०।।

# परिशिष्ट

## १–डिंगल का व्याकरण

भाषा-शास्त्र के नियमानुसार जब एक बोली साहित्यिक भाषा के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाती है तो उसका जन भाषा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। वह विशिष्ठ-वर्ग के साहित्यिक विधि-विधानों का एक अलंकारिक रूप-वैभव लेकर निखरती है, उसका आलोक एक विशेष-वर्ग को ही आलोकित करता है। वह अपनी साज सज्जा का अपूर्व रूप विन्यास रचती है, किसी एक भव्य प्रासाद के अन्त:पुर की पट्ट-महिषी अपनी शृङ्गार-साधना में लीन जगत को उपेक्षित दृष्टि से देखती हो। जन-भाषा इस साहित्यिक पट्ट-महिषी द्वारा उपेक्षित अपनी लीला-क्रीड़ा में गतिशील रहती है। शनैः शनै: वह भी अपने स्वरूप में 'एक-रूपता' धारण करती है और उसकी गति भी एक विशिष्ठ पथ का अनुसरण करती है। युगों की करवटों के साथ साथ भाषा भी करवटें लेती हुई अपना भिन्न भिन्न रूप धारण करती है। इस रूप-परिवर्तन का अपना एक विशेष महत्त्व है जो अपने युग के जन-मानस की तृप्ति का साधन बना है। इसी रूप-विन्यास में डिंगल का स्वरूप भी ओज-गुण, प्रसाद-युक्त काया की मनोहरता लेकर निखरा है। डिंगल की काया को नागर अपभ्रंश के जन प्रचलित परवर्ती रूप ने गठन किया है जिसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश के नियमों के पालन की अपेक्षा लोक-प्रचिलित रूप की ओर अधिक झुकाव था।

भाषा-क्षेत्र में डिंगल का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। विस्तृत क्षेत्र की भाषा में स्थान-भेद के कारण परिवर्तन होता रहता है। अपभ्रंश की भी यही अवस्था थी। स्थान-भेद के कारण इसमें

विभिन्न रूप दृष्टिगत होने लगे। पश्चिमी बोलियों ने अपना स्वतंत्र रूप धारण किया जिसमें राजस्थान प्रान्त की पूर्वी व पश्चिमी बोलियों के विकसित रूप को परवर्ती अपभ्रंश में पिंगल तथा डिंगल का प्रधान अस्तित्व माना जाने लगा। डिंगल का उच्चारण, व्याकरण, लिपि तथा काव्य-सम्बन्धी समस्त विशेषताएँ अपनी हैं। डिंगल का अन्य वर्तमान उन्नत भाषाओं के समान अपना वृहत शब्द-कोष, विशद व्याकरण, स्वतन्त्र छन्द-शास्त्र तथा रीति-शास्त्र है। परन्तु भाषा की स्वच्छन्द व उदार वृत्ति ने वैयाकरणों के लिए जटिलता उत्पन्न करदी है। यह अवश्य है कि इसे व्याकरणों के सूत्रों में बांध कर नहीं आंका जा सकता। चेतन तथा गतिशील भाषाओं का यही रूप इतिहास है। अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी भाषा उदाहरण रूप है। डिंगल में नियमों का अपवाद अधिक मिलता है, फिर भी नीचे डिंगल की प्रमुख व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है जो इस प्रकार है:—

## वर्ण-माला

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्वर | अ | इ | उ | ए | ओ | ऋ | (ह्रस्व) |
| | आ | ई | ऊ | ऐ | ओ | औ | (दीर्घ) |

सभी स्वर (अनुनासिक) होते हैं।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| व्यंजन | क | ष (ख) | ग | घ | ङ |
| | च | छ | ज | झ | ञ |
| | ट | ठ | ड | ढ | ण |
| | त | थ | द | ध | न |
| | प | फ | ब | भ | म |
| | य | र | ल | व | |
| | श | ष | स | ह | |

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कंठ्य ध्वनि | —क | | ख | | ग | | घ | ङ |
| तालव्य ध्वनि | —च | छ | ज | झ | ञ | | श | य |
| मूर्द्धन्य ध्वनि | —ट | ठ | ड | ढ | ण | | ष | ल |
| दंत्य ध्वनि | —त | थ | द | ध | न | | | स |
| औष्ठ ध्वनि | —प | फ | ब | भ | म | | | व |
| वर्त्स्य ध्वनि | —र | | ल | | न्ह् | | ल्ह् | |
| दंतोष्ठय ध्वनि | —व | | | | | | | |
| स्वयंत्रीय ध्वनि | —ह् | | | | | | | |
| अनुनासिक ध्वनि | —ङ | ञ | ण | न | म | | | |

## ध्वनि-विकार

(१) वर्त्स्य 'ल' का मूर्द्धन्य उच्चारण होता है जिससे शब्द के अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है; -यथा,
'ढाल' (शस्त्र विशेष), 'ढाल' (ढलाव); पोल (अंधेर), 'पोल' (मुख्य द्वार)।

( २ ) 'ख' का ध्वनि संकेत 'ष' से मिलता है; यथा—
गौख—गौष

( ३ ) 'ष' ध्वनि संकेत तत्सम रूप में 'ष' ( मूर्द्धन्य ) उच्चरित होता है; यथा—धनुष ।

( ४ ) दंतोष्ठ्य 'व' का कंठ्य उच्चारण 'व़' होता है ;

( ५ ) डिंगल में घोष महाप्राण 'घ झ ढ़ ध भ' शब्द आदि में रहने से मुख्य ध्वनि के साथ उपालिजिह्वीय मिश्रित भी ध्वनि निकलती है और मध्य व अन्त में रहने पर इनका

प्राण उपालिजिह्वीय स्पर्श होकर आद्य-अक्षर की ओर खिंच जाता है।

( ६ ) उपालिजिह्वीय घोष संघर्षी ध्वनि 'ह' उपालिजिह्वीय घोष स्पर्श हो जाती है। मध्य, अन्त में होने से 'स्पर्श' होने के साथ आद्य-वर्ण के साथ इसका प्राणत्व खिंच जाता है।

( ७ ) बलाघात द्वारा अर्थ विकार उत्पन्न होता है—

नार—( स्त्री )      नार—( सिंह )

मौर—( पीठ )      मौर—( स्वर्णमुद्रा )

डिंगल में 'ऋ' का स्वतंत्र प्रयोग प्राप्त नहीं होता है। केवल मात्रा रूप में प्रयोग किया गया है। पर हृदय का ऋदय रूप पाया जाता है।

## लिंग

डिंगल में लिंग व्यवस्था अपभ्रंश के समान ही अस्थिर रही है। प्राचीन डिंगल में यह प्रभाव लक्षित होता है पर अर्वाचीन डिंगल में ये रूप दृष्टिगत नहीं होते। यहां पर पुल्लिग व स्त्री-लिंग ही प्राप्त होते हैं। प्राचीन रूपों में लिंग परिवर्त्तन भी दिखाई देता है। यथा—

| | |
|---|---|
| काय ( पु० ) | काया ( स्त्री० ) |
| कलत्र ( नपु० ) | कलत्र ( स्त्री० ) |
| देह ( नपु० ) | देह ( स्त्री० ) |

इस लिंग परिवर्तन की प्रवृत्ति के कारण ही नपुंसक लिंग अर्वाचीन डिंगल में कहीं स्त्रीलिंग व कहीं पुल्लिग शब्दों में समा गया है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। यथा—'टाबर', 'माइत'।

## वचन

डिंगल में दो वचन—एक वचन और बहु वचन हैं। एक वचन से बहु वचन के बनाने के साधारण व कतिपय नियम यहां दिये जाते हैं। कहीं कहीं इनका अपवाद भी मिलता है।

(१) अकारान्त व आकारान्त पुल्लिग व स्त्रीलिंग शब्दों का अन्त्य अ, आ = आं, यां मिलता है। कहीं पर 'श्रुति' अनुसार अन्त्य अ या आ का लोप होकर 'यां' या 'वां' जुड़ता है। नर = नरां, कायर = कायरां, पाडा = पाडां, गाय = गायाँ, तरवार = तरवारां, तरवार्यां, मा = मांवां, बहू = बहूवां।

अपवाद—घर = घरां दोनों रूप एक वचन में प्रयुक्त होते हैं।

(२) स्त्रीलिंग व पुल्लिग शब्दों में अन्त्य स्वर 'इ या ई' हो, तो इ, ई = यां हो जाता है। कहीं कहीं इ, ई का लोप होकर 'यां' जुड़ता है। यथा—

(प्र०)—हाली = हाल्यां, थाली = थाल्यां (स्त्री०) कवि = कवियां (पु०), (स्त्री) छाली = छालियाँ।

(३) पुल्लिग शब्द में अन्त्य ओ=आ बनता है; प्यालो=प्याला

( ४ ) 'अ' स्वरान्त स्त्रीलिंग व पुल्लिग शब्दों में 'वां' जोड़ा जाता है। यथा :—पील्रू = पीलवां, खेल्रू = खेल्रूवां, बह्रू = बहुवां।

( ५ ) 'ओ' स्वरान्त स्त्रीलिंग व पुल्लिग शब्दों में 'वां' जोड़ा जाता है। यथा:—पो = पौवां, गो = गौवां, भो = भौवां।

# कारक विभक्तियां

डिङ्गल में प्राय: विभक्ति चिन्ह स्त्रीलिंग व पुल्लिग शब्दों के साथ बहुत कम प्रयुक्त होते हैं। इसकी पूर्व परम्परित भाषाओं की तरह इसमें पृथक् पृथक् विभक्ति चिन्ह पुल्लिग, स्त्रीलिंग शब्दों के लिये प्रयुक्त नहीं होते। 'ए' ऐसी सामान्य विभक्ति है जो सम्बोधन के अतिरिक्त सब कारकों के पुल्लिग एक वचन में प्रयुक्त होती है। बहु वचन में प्राय: इसका रूप 'आं' या 'वां' मिलता है। कहीं विकल्प से 'आ' भी मिलता है। निर्विभक्तिक और सविभक्तिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता हैं।

| कारक | अपभ्रंश से आई हुई विभक्तियां। | स्वतन्त्र विभक्ति चिन्ह |
|---|---|---|
| कर्त्ता | • उ | इ, ए |
| कर्म | ० उ | ए, तैं, तें, तै, ते |
| करण | ए | इ, इइ, ए, ० |
| सम्प्रदान | + | ऐ, ए, नू, आं |
| अपादान | हू | ० ए, हूँ, सम, सौं, सों, से |
| सम्बन्ध | ० ह, हाँ | ए, कौं, हि, क, को, के, हन, कह |
| अधिकरण | इ, ए | ० परि, पर, पै, पैं |

सम्बोधन + ऐ, रे, अहो, हो, रे

नोट—'शून्य' विभक्ति लोप का चिन्ह है। सम्बोधन के अतिरिक्त शेष कारक विभक्तियां अन्य कारकों में परस्पर प्रयुक्त भी होती रही हैं।

## पर-सर्ग

भाषा की स्वच्छन्द प्रवृति होने के कारण शब्दों का सम्बन्ध अस्पष्ट होता जा रहा था। जिससे अर्थ-बोध में कठिनता होगई; अतः सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए अधिकाधिक पर-सर्गों तथा प्रत्ययों का प्रयोग किया जाने लगा था। डिंगल के प्रत्यय इस प्रकार हैं—

कर्म—कहं, नइ, नै, प्रति, रहइ।

करण—करि, नइ, पाहि, साधि, सिउं, सूं,।

सम्प्रदान—लागि, कन्ह, नै, लगि, लग, काज, प्रति।

अपादान—कन्है, कन्हइ, तउ, थउ, थकउ, थकि, पासइ, लगि, पाहिं, हूंत, हूंता, हूंतो, हंती, थी।

सम्बन्ध—केरो, केरी, कर, केरा, केरउ, तजउ, तजौ, नउ, रउ, कउ, रहइ, हंदो, रा, री, रे, रो, चां, ची, चै, चौ।

अधिकरण—मध्य, मधि, मांहि, महि, मांझ, मंझ, मझं माझं, मंझार, मझाल, मझारि, मह, मांहि, माहैं, मां, ताइ, पासइ, कन्हइ, मांहि।

## विशेषण

डिंगल में विशेषण के लिंग, वचन, और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुरूप ही होते हैं। पर स्त्री-

लिंग सूचक विशेषण प्राय: इकारान्त हुआ करते हैं। उनके रूप विशेष्य के लिंग वचन व कारक के अनुसार नहीं होते, पुल्लिग सूचक शब्द प्राय: अकारान्त और ओकारान्त होते हैं। इसमें संख्या-वाचक विशेषण प्राय: विभिन्न भाषाओं से आये है। इनमें मुख्य भाषाएँ इस प्रकार हैं—संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, प्राचीन राजस्थानी और फारसी। डिंगल में विशेषण रूप निम्न प्रकार हैं:--

(१) गुणवाचक विशेषण—मीठा, खाटा, मरजल आदि।

(२) परिमाणवाचक विशेषण—चौड़ी, पातली, झीणी आदि।

(३) संख्यावाचक विशेषण—एक, एक्क, इक्क, बे, बिय आदि।

(४) व्यक्तिवाचक विशेषण—प्राय: 'इय' प्रत्यय लगा कर बनाए जाते हैं—सैनमुह, सुरतानिय।

(५) सार्वजनिक विशेषण—निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक और प्रश्नवाचक सर्वनामों के शब्दों के प्रयोग से बनता है—कवण मिनख।

# सर्वनाम

डिंगल के सर्वनाम रूप बहुधा अपभ्रंश के रूपों के अनुसार ही होते हैं। कहीं कहीं इनमें कुछ परिवर्तन करके भी ये नवीन रूप निर्माण लिए गए हैं।

## पुरुषवाचक सर्वनाम

### 'मैं' के रूप

| कारक, | अपभ्रंश से आए हुए रूप | डिङ्गल के अपने रूप | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | हुं, मइं, म्हे, हौं, हों। | × | म्हें, हम. |
| कर्म | हुं, मूं, मूझ, अम्ह। | मोहि, मुहि, मो। | म्हा, हमारे। |

| कारक, | अपभ्रंश से | डिङ्गल के | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| करण | मोहि | × | |
| सम्बन्ध | मुझ, माहरो, अम्हीणि, म्हारउ, मुमझ, म्हारो, अम्हीणो, | मो,मेरी.ठरी,ठरे, मारो, अम्हीणी, अम्हा। | हमारी |
| अधिकरण | अम्हां। | ” | × |

## 'तू' के रूप

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | तुम्ह, तुम्हां × | तू, तैं, थैं, | थे, थ्ये. |
| कर्म | तइ,तुम्ह, तुम्हा। | × | तुम्हं,तुम्हां,थां। |
| करण | तुम्हांसूं। | × | × |
| संबंध | तुझ, तुमझ, ताहरो, तुम्हींणो, तूझ। | थारौ, थारी.। | थांरौ, थांके. |

## 'वह' के रूप

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | सो, सू, ते. | तिको,तिका,तिकं. वो,सोइ,तिणि. | वे, ते, ता, उणां |
| कर्म | ताहि, ता, त्यां. | उण,उणां,त्यां, तिणनै. तिणि, तेण | तेह,तिण,वां, उवां,त्यां,तांह, तिणनै. |
| करण | तोहि | × | × |
| संबंध | तास, तसु, तस. | तिणरा, उणरौ, ताकौ. | तिणारा,उणरां,वाणां, तांहका,थांका, तिन |
| अधिकरण | तिन. | × | |

## निश्चयवाचक सर्वनाम

'यह' के रूप:

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | एह ए, आ. | इह, इहै. | औ,इणां,यां,एह,ये,इहै,ऐ. |
| कर्म | ,, ,, | इण,एण,इणनै याहि, या. | इणनै, आंने,इण, अण, इन, इनि, ऐ, ए. |

| कारक, | अपभ्रंश से | डिङ्गल के | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| करण | एणइ,इणइ, इणि,एणि. | × | एहे, एणे. |
| सम्प्रदान | एह, इहं, अहां. | × | एहु इहु, एह. |
| अपदान | एह, ए. | × | एह. |
| संबंध | ,, ,, | याकौ, ईणरा, ईरा. | इणांरा, अैंरा, यांरा, इनको, इयं,इअं. |
| अधिकरण | एहि, एणहू, | × | एहे, एणे. |
| | इणहू,इणि,एणि. | × | × |

## 'वह' के रूप

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | × | उह, उहे, वह. | वे |
| कर्म | × | वाहि. वा. | उन. |
| संबंध | × | बाकौ.विंणरा, | विणाँरा,वैंरा, |
| | × | विंरा, उन. | वांरा,उनको. |

## प्रश्नवाचक

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | कवण,कउंण,कुंण,कुण,कूण. | को. | कुण,किणां,केवि. |
| कर्म | को,किणनै,कवण,केण,कीणै. | × | कीनै,कणांनै,केह. |
| करण | कउंणइ, कउंणिइं, कुणइं किणइं, कणइं कणि. | × | कुणाइं, कुणाहं, कणि. |
| सम्प्रदान | कं, किंह | × | किहां, केइ. |
| अपादान | कहि, केह, कह, किण. | × | केहां, किणां, केहं, केंह, कियं. |
| सम्बन्ध | कुणह | × | किणारां. |
| अधिकरण | कहिं, कांहइं | × | कांहांइं, किणाँ |

## अनिश्चयवाचक

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | कावण, कउंण, कुंण,काको, | × | किणां, कुण. |

| कारक, | अपभ्रंश से | डिङ्गल के | बहुवचन |
|---|---|---|---|
| कर्म | कोई,कोइ,कोवि,कोय. | किणनै,किण,कीनै, किणि, कीनै। | किणानै, |
| करण | कियइं ( व अन्य रूप प्रश्नवाचक सर्वनाम के अनुसार ) | | कियाहं, |
| संप्रदान | कं, किहं | × | किहां |
| अपदान | केह, कहि | × | केहां |
| सम्बन्ध | कुणह | किणरा, कींरा। | किणांरा |
| अधिकरण | कुणाइं, कुणाहइं, किण | | कुणाइं, किणां |

## सम्बन्धवाचक

'जो' के रूप

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | जो, जु, जा। | जिको, जिण, जे, जोह, जे, जिणानै, | जे, जेअ, जिकां, जिणाँ |
| कर्म | ,, ,, ,, | × | जेहु, जिका, जिणानै, जिकाँ |
| करण | जेणइ, जिणइ, जैणिह, जिणि | × | जेहिं |
| सम्प्रदान | जा, जिहिं, जउ, जू | × | जोणि, जिणि |
| अपादान | जेह, जे, जस, जास, जिह | | × |
| सम्बन्ध | ,, ,, ,, ,, ,, | जिणकौ ज्यांरी, जिए, जिणर | जियांरा; जियांकौ. ज्यांरा, ज्यांकौ, जे, जिअं जियं. |
| अधिकरण | जिहिं, जहिं, जेणइं, जिणाइं, जेणि, जिणि | × | जिणांइं, जेणांइं, जांहि |

| कारक, | अपभ्रंश से | डिङ्गल के | बहुवच |
|---|---|---|---|
| | **'सो' के रूप** | | |
| कर्त्ता | सोइ, सोय, सु, सा. | × | ते |
| कर्म | ,, ,, ,, | तिणनै | तेह |
| करण | तिणइ, तेणइ, तिणह | × | तेहि, तेह |
| सम्प्रदान | ता, तहं, तउ तू | × | तेह, तिह |
| अपादान | तास, तस, तसु, तह, तेह, तिह, ते । | × | ते, ताहं |
| सम्बन्ध | तास, तस, तसु, तह, तेह, तिहते । | तिणरा, तणरौ । | तांह |
| अधिकरण | तहि, ताहि, तेणइ, तिणइ, तेणि, तिणि. | | तांहि, तिणांई |

## निजवाचक सर्वनाम

'आप' के रूप

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्त्ता | × | आप | आपां |
| कर्म | × | आपनै | आपांनै |
| करण | × | आपइं | आपाणह |
| सम्प्रदान | × | आपरै | आपांरै |
| अपादान | × | आपतै, आप । | आपांतै, आपाणइं, आप |
| सम्बन्ध | × | आप, आपरौ | आपां, आपाणो, आपर |

## क्रिया

वर्तमान काल—(१) प्रायः इस काल को प्रकट करने के लिए 'है' के स्थान पर छै, छूं, छां, अछइ, छइ, छउ का प्रयोग होता है; यथा—जावे छै, जावूं छूं, जावां छां आदि ।

(२) धातु में इ, ई, ऐ, ए, ऐं, एं, ओ, औ, अं, 'वइ' आदि

विभक्ति या प्रत्यय लगाने से वर्तमान काल की क्रिया बनती है, यथा—करइ, होय, होइजे, होवे, हवई आदि।

भूतकाल—(१) अपभ्रंश के क्रिया रूपों का औकारांत या ओकारान्त भी किया जाता है; यथा—दिण्ण>दीनौ

(२) कृदन्त का प्रयोग भूतकाल की क्रिया के लिए होता है; चल्यौ, चलै चली, चलीं आदि।

(३) धातु में आ, औ, इ, ई, इय, इअउ, हउ, उठ, यउ, तउ, त यौ, ल्यौ. ल्इव, ल्एव, ए, ऐ, आदि परसर्ग जोड़े जाने पर भूतकाल की क्रिया बनती है; यथा—उडिउ, भयो, भया, भयौ, होइ, होइय, धोयौ आदि।

भविष्यत काल—(१) वर्तमान काल की क्रिया 'हौं' का रूप भी प्रयुक्त होता है; यथा—चलिहौं, करिहै, होइहै।

(२) कृदंत का प्रयोग भी होता है; तथा—होय (प्रभु सुहाय प्रभुराव)।

(३) धातु में इ, स्यां, स्यूं, सी, ला, ली, लो, सइ, सि, स्सहि स्यइ, गो। प्रत्यय लगाकर भविष्यत काल के रूप बनते हैं; यथा—दुसइ, होस्यइ, होसी, जास्यां, जावेला आदि। पछताइगो (पृ० रा०)।

## पूर्वकालिक क्रिया

१. क्रिया के अन्त में इ, ई, अ, य, नइ, कारि, एवि, एविय, इय, ए, इयै, ऐ, ह, नै आदि प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक क्रिया के रूप बनाते हैं; यथा—पणमेवि, दोड़िकरि, ठानि, भारिअ आदि।

## विधि क्रिया

१. धातु में ऐ, इ, उ, ए, औ लगाकर विधि क्रिया के रूप बनते हैं; यथा—करे, करो।

## प्रेरणार्थ क्रिया

१. धातु में वे, जै, आदि रूपों का प्रयोग किया जाता है लिखावै, करावै, फरमावै, कराइजै, आदि। धीरे धीरे प्रेरणार्थक क्रिया का लोप होकर इसके स्थान पर संयुक्त-क्रिया का प्रयोग आरम्भ होगया था।

## कर्मणि प्रयोग

१. धातु में जइ, इ, ईजसी प्रत्यय जोड़ने पर बनते हैं; यथा—करिजइ, दिइजइ, जाईजसी आदि।

## संयुक्त क्रिया

१. यह क्रिया सिद्धावस्था क्रिया व साध्यावस्थापन्ना क्रिया के संयोग से बनती है; यथा—धरिसकों, करिसकों आदि।

## क्रियार्थक संज्ञा

१. धातु में इन, इव, इवे, अउं, अया, इण, तण आदि प्रत्यय लगाकर बनाई जाती है; यथा—रत्तण, जीवण, लखि, जुरन, लरिन आदि।

## कृदन्त

वर्तमान कृदन्त—धातु में त, अन्त, अत, इण, अति, अन्ति जोड़ने से वर्तमान कृदंत बनता है; यथा—सुनत, होत, हुवंत आदि।

भूत कृदन्त—भूत कृदन्त का रूप क्रिया में ई, ईं, ऐ, हुअ, हुए, हुय इय, आदि प्रत्यय जोड़ने से बनता है; यथा—चल्यो, चलै, चली, चलीय।

भविष्य कृदन्त—धातु में इयइ, ए, इवउ, अवउ, हार प्रत्यय जोड़ने से भविष्य कृदन्त बनता है; यथा—होनहार, करिवउ, धरिवावेउ।

## अव्यय

क्रिया विशेषण—निश्चइ, बेगि, साथइं, अनेठि, अरहं, वरहं किह, किहां, एथि, आगे पाछै, अठै, उठै, नत, तड़कै, जदू, पछे, बाहरि, माहइ, बीचि, कालि, काल्हि, रातइ, घणु, थोड़इ, इ, ज, हि, उ, (एव), इम, एम, यूं, न, नहं, म, मति, अवस, बहु, अत, किसौ, इतरों आदि।

समुच्चय बोधक—पणि, पुणि, बलइ, बलि (फिर), अनहइ (अन्य), जइ, जउ (यदि), तउहि (तथापि), तेहिपण (फिर भी), जेणि, तेणि, जेह, तेह, अवर और अपर आदि।

## प्रत्यय

तउ, इलउ, अलउ, ड, ड़, उ, ली, डा, ला, ड़ी, हउ, अत, अन् तथा उपसर्ग अण का प्रयोग होता है; जैसे महिलउ, रातड़ी (ए. व.) रात्तड़ियां (ब. व.) अणजाणउ (अनजाना), अणदीठउ (अनदेखा) बागली (ए. व.) वागलियां (ब. व.)।

## २—रासो की भाषा की प्रमुख विशेषताएं

'पृथ्वीराज रासो' के रचना-काल पर हम पूर्व विचार कर चुके हैं। इस युग में अन्य प्रान्तीय बोलियाँ अपभ्रंश से सम्बन्ध-विच्छेद कर भाषा का रूप धारण कर रही थी। 'रासो' की भाषा भी इसी सक्रांतिकालीन युग की है। इसकी भाषा का विश्लेषण करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। रासोकार ने अपनी इच्छानुसार शब्दों को काट-छाँट कर छन्दों के साँचे में बिठाया है। इस भाषा ने उन्मुक्त होकर अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपने भंडार में स्थान दिया। फलतः इसमें 'संस्कृत' से लेकर 'अपभ्रंश' के शब्द व उनकी प्रकृतियों का समावेश हो गया है। इसके अतिरिक्त, यह भाषा विदेशियों के सम्पर्क में भी आई। कुछ शब्द वहाँ से भी आये। इस प्रकार शब्दों को अपने यहाँ आश्रय देकर उन पर स्वेच्छाचारी शासन आरम्भ किया गया। अतः 'रासो' में अनेक भाषाओं का मिश्रण हो गया है। चंद ने भी 'रासो' की 'भाषा-बहुल' प्रकृति की ओर संकेत कर दिया था—"षड्-भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया'। कवि का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण 'पुरानं' व 'कुरानं' शब्दों से लक्षित होता है। संभवतः चंद 'पुरानं' शब्द से उन भाषाओं की ओर संकेत करते हैं जिनमें इस काल तक पुराण रचना हो चुकी थी, जिनके नाम 'संस्कृत', 'प्राकृत' और 'अपभ्रंश' हैं। 'कुरानं' शब्द से विदेशी भाषाएं फारसी, अरबी व तुर्की से चंद का अभिप्राय रहा हो। इस उक्ति के अनुसार चंद ने 'रासो' में उक्त छः भाषाओं का तो प्रयोग किया ही है, इनके अतिरिक्त इसमें अन्य भाषाओं पश्चिमी-राजस्थानी, पुरानी-गुजराती, पंजाबी, ब्रज, सिंधी आदि के शब्द भी मिलते हैं क्योंकि 'रासो' में प्रक्षिप्त अंश अधिक हैं जो समय-समय पर इसमें जुड़ते रहे हैं। वैसे 'रासो' भाषाओं का अजायबघर-सा बन गया है; पर भाषा--शास्त्र की दृष्टि से यह ग्रन्थ आधुनिक देशी भाषाओं के प्रारम्भिक

रूप के अध्ययन के लिये अद्वितीय है। 'रासो' में इस प्रकार उदार व स्वच्छन्द प्रकृति के कारण भाषा-सम्बन्धी दुरूहता बढ़ती ही गई। इसमें कुछ हाथ सम्पादकों व लिपिकारों का भी रहा है। फिर भी इस भाषा की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन नीचे दिया जा रहा है। वस्तुतः, इस भाषा को नियमों में नहीं बाँधा जा सकता; क्योंकि यह भाषा नियमों के बन्धन को स्वीकार करके चलने वाली नहीं थी। अनुमानतः सभी नियमों के अपवाद इसमें मिल जाते हैं।

## ध्वनि–विकार

स्वर—

१. **स्वतन्त्र प्रकृति**

आ > अ–हाथ > हथ्थ। भाला > भल्ल। आज्ञा > अग्या।

आ > इ–ज्ञान > गियान।

इ > अ - दिन > दन।

ई > अ–हरीतकी > हरडइ। (प्राकृत से यह ध्वनि ग्रहण की गई है।)

ई > ऊ–विहीन > विहूण।

उ > इ–पुरुष > पुरिस।

उ > ओ–मुद्गर > मोग्गर।

ऊ > अ–ऊर्ध्व > अध्व।

ऊ > ओ–मूल्य > मोल।

ऐ > इ–प्रेम > पिम्म।

औ > ओ,उ–यौवन > जुवान, जोवन।

२. **अन्य भाषा से सम्बन्धित—**

अ > इ (रा. भा.) पण्डित > पिंडत। मनुष्य > मिनख। (पा.) तमस् > तिमिस।

१. ऋ > उ (सं.) कृत > कुठ। (प्रा.) वृन्द > बुन्द। (अ.) पृष्ठ > पुट्ठि। (रा. भा.) पृथिवी > पुहमी।

२. **संयुक्त वर्ण के आद्य-स्वर का ह्रस्वीकरण—**

(सं.) रादेसीप्रा > रोदसिप्रा । (प्रा.) रात्रि > रत्ति । (अ.) कार्य > कज्ज (रा. भा.) प्रेम > पिम्म ।

३. स्वर-आगम—(सं.) स्वर्ग > सुवर्ग । (प्रा.) स्व > सुव । (अ०) दीर्घ > दीहर । (रा. भा.) स्वर्ग > सुरग

४. स्वरलोप—(अ०) अरण्ण > रण्ण ।(रा. भा.)आत्मनः > तणौ ।

**व्यंजन—**

१. ण > न (प्रा०)गुण > गुन । (रा. भा.) प्रमाण > प्रमान ।

२. क्ष > ष (ख) (अ०) क्षण > खण । (रा. भा.) क्षण > षिन ।

३. स्वरद्वयांतर्गत व्यंजन का श्रुति द्वारा 'य'—(प्रा.) सागर > सायर । (अ.) पद > पय । (रा. भा.) नगर > नयर ।

४. विकल्प से ट > र—कोटि > कोरि । भट > भर ।

५. य > ज—(पालि) यंत्रागार > जंत्रागार । (प्रा.) यम > जम । (अ.) यस्य > जसु । (रा. भा.) युग > जुग ।

६. श्य, श्व, श > स—(अ०) वेश्यत्व > वेसत्तण । (रा. भा.) उद्देश्य > उद्देस । (प्रा.) श्वसन > ससन । (अ.) वैश्वानर > वइसाणर । (रा. भा.) श्वेत > सेत ।

(प्रा.) सदृशी > सरिसी । (अं.) देशज > देसज । (रा. भा.) शयन > सेन ।

७. श, ष, स > छ—(पालि) शाव > छाव । (प्रा.) षष्ठ > छट्ठ । (अ.) अप्सरा > अच्छरी । (रा. भा.) मनुष्य > मनुछ ।

८. ज्ञ > ग्य—(अवधी) ज्ञान > ग्यान । (ब्रज) ज्ञाति > ग्याति । (रा. भा.) राज्ञी > रागिनी ।

९. संयुक्त आद्य 'द' का लोप—(प्रा.) मुद्गर > मुग्गर । (अ०) गद्गद > गग्गर । (रा. भा.) द्वि-प्रहर > विपहर ।

१०. ध्य, ह्य > झ—(पालि) सह्य > सज्झ । (प्रा.) ध्यान > झाण । (अ.) दह्यति > दज्झ । (रा. भा.) बंध्या > बांझ ।

११. ष्म, ह्म > म्म, म्ह, म्भ (प्रा.) ग्रीष्म > गिम्म, गिम्ह । अ० ब्रह्म > बम्म,

(रा. भा.) ब्राह्मण> बंभन ।

१२. संयुक्त 'य' का लोप—(प्रा ) व्याध> वाह । (अ.) व्यापार> वावारउ ।
(रा. भा.) सत्य> सत ।

१३, संयुक्त 'य' का लोप अवशिष्ट वर्ण का द्वित्व—(अ.) कल्य > कल्ल ।
(रा. भा.) सत्य> सत्त ।

१४. स्वरद्वयांतर्गत ऱ्> र तथा परवर्ती वर्ण का द्वित्व—दुर्ग> दुरग्ग ।

१५. स्वरद्वयांतर्गत 'र' पूर्ववर्ती वर्ण में परवर्ती वर्ण बनता है तथा परवर्ती वर्ण का द्वित होता है—गर्व> ग्रव्व ।

१६. संयुक्ताक्षर में परवर्ती 'र' हो तो आदि-व्यंजन में स्वरागम होता है ।

१७. 'र' का विकल्प से लोप होता है-(सं.) प्रगल्भ> पगल्भ । (अ.) प्रिय> पिय । (रा. भा.) प्रहर> पहर ।

१८. 'रेफ' का लोप व अवशिष्ट वर्ण का द्वित्व—(अ.) कार्य> कज्ज (रा भा.) पूर्व> पुव्व ।

१९. संयुक्त 'व' का लोप व अवशिष्ट, मध्य या अन्त्य वर्ण का द्वित्व-(अं.) तत्व> तत्त (रा. भा.)> सत्त्य> सत्त ।

२०. ष्ट> ट, ठ, ट्ट,—(अ०) काष्ठ> कट्ठ । (रा. भा.) रिष्ट> रीट्ठ ।

२१. स्प, ष्प> फ—(अ.) स्पर्श> फंसण (रा.) स्पंदन> फंदन । (अ) पुष्प> पुप्फ । (रा. भा.) वाष्प> बाफ ।

२२. आवश्यकतानुसार किसी भी शब्द में 'विकार' किया जा सकता है, यथा—'अनुस्वार आगम' । यह प्रवृति प्राकृत से स्वर-लालित्य के लिये ग्रहण की गई ।

## रूप विचार

### विभक्ति विचार

क—लगभग सभी कारकों में निर्विभक्तिक पदों का व्यवहार होता है । यह प्रवृति परवर्ती अपभ्रंश में भी थी ।

ख—विभक्ति लोप के साथ-साथ अधिक परसर्गों का प्रयोग अधिक हो गया था । यह प्रवृति अपभ्रंश में आरंभ होकर यहां पूर्णता को प्राप्त हो गई है ।

| **विभक्ति: एकवचन** | | **बहुवचन** |
|---|---|---|
| कर्त्ता— | इ, उ ० | ० आं, यां, आ |
| कर्म— | तैं, तें, ते ते, उ ० | ० आं, यां. |
| करण— | इ. इइ. | ए. ० |
| संप्रदान— | ए. नूं. आं | × |
| अपादान— | हुं. सम. सौ. सें. से | × |
| संबंध— | कौ. कों. के. ह. न. हि. क.० | ह. हां. ० आं. यां. |
| अधिकरण— | परि, पर, पैं, पै, इ, ए, | एं. ० |
| संबोधन— | अहो. हो. हे. रे. ऐ. | हे. |

**परसर्ग:**

कर्त्ता—×

**कर्म**—कहं, कह, नइ, रहइ ।

करण—करि, नइ, पाहि, साधि, सिउं, सूं, साथि ।

संप्रदान—लागि, कन्ह, नै, लगि, लग, काज ।

अपादान—कन्है, कन्हइ, तउ, थउ, धकउ, थकि, पासइ, लगि, पारि, हूंत, हूंता, हुंतों, हुंती ।

संबंध—केरो, केरी, केरउ, तणउ, नउ, रउ, रहइ, तणौ, कउ, केर, केरा ।

अधिकरण—मध्य, मधि, माहि, महि, मांझ, मंझ, मझं, मझ, मझार, मझाल, मझारि, मह, माहिं, मांही, माहैं, मां, कन्हइ, तांइ, पासइ ।

संबोधन—×

## लिंग विचार

रासो के पुल्लिंग में शब्द बहुधा अकारान्त, आकारान्त, ओकारान्त और औकारांत और स्त्री-शब्द आकारान्त इकारान्त शब्द मिलते हैं। विद्वानों ने इस भाषा में तीनों पुल्लिंग, स्त्रीलिंग व नपुसंकलिंग के

शब्द बताये हैं, पर इस भाषा में लिंग-सम्बन्धी अव्यवस्था पाई जाती है। नपुसंक लिंग के शब्दों को स्त्रीलिंग रूप भी मिलता है। कहीं पुल्लिग शब्दों में 'आकारांत' 'इकारांत' करके भी लिंग परिवर्तन किया जाता है। विशेषण में लिंग विशेष्य के अनुसार होता है। सर्वनाम में लिंग भेद क्रिया द्वारा प्रकट होता है।

## वचन-विचार

इस भाषा में वचन दो ही मिलते हैं। उनके संज्ञा-रूप कहीं विभक्ति सहित और कहीं रहित होते हैं। सर्वनाम में एक वचन का रूप कहीं बहुवचन में भी प्रयुक्त होता है। विशेषण का वचन अपने विशेष्य के अनुसार ही होता है। समूह वाची शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

## विशेषण

रासो की भाषा में विशेषण के लिंग, वचन और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक का ही अनुसरण करते हैं। इनके रूप विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के समान नहीं होते, पर स्त्रीलिंग सूचक विशेषण प्रायः इकारान्त होते हैं। विशेषण और विशेष्य का सम्बन्ध विभक्ति रहित विशेषण व कहीं सविभक्तिक विशेषण से प्रकट किया जाता है। संख्यावाचक विशेषण प्रायः संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, प्राचीन राजस्थानी से आये हैं। विदेशी भाषा के संख्यावाचक शब्दों का भी प्रयोग किया है।

## सर्वनाम

'रासो' में सर्वनाम शब्दों का प्रयोग हुआ है वे प्रायः अपभ्रंश से ही आये हैं और कुछ उसी के आधार पर सरलीकरण की ओर दृष्टि रखते हुये नवीन रूप भी गढ़ लिये गये हैं। इनका विस्तृत विवेचन डिंगल का व्याकरण वाले अध्याय में किया जा चुका है।

## क्रिया

'रासो' की भाषा में क्रिया के विविध-धातु रूपों का व्यवहार हुआ है। वे 'धातुरूप' इसको परंपरा से संस्कृत, पाली, प्राकृत, और अपभ्रंश से मिले हैं। कुछ विदेशी रूप भी मिलते हैं, कुछ इसके अपने हैं।

१. मूल-धातु-भू > भयो, भय, भयौ, भौ, भई। अस्मि > हयौ।

२, विकरण-धातु—दीठउ, उलसइ, लीनउ, नीपइ, आदि।

४. ध्वन्यात्मक-धातु—ये धातु अपभ्रंश के आधार पर बनाये हैं; धुम्मिय, (बजना) हिनहिनाइ, चोहायते, (चहचहाना), कुहकुहंत।

५–देशी धातु—छोलना, धुम्मड़, घुड़क, आदि।

६–विदेशी—क्रियापद (फा०) अजमायौ, बगसि, बगसी, आदि।

इन धातुओं से क्रिया रूप अपभ्रंश प्रत्यय लगाकर भी नए रूप बनते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें क्रियाओं के नवीन रूप भी मिलते हैं। क्रिया के रूप निर्माण के विषय में हम व्याकरण वाले अध्याय में विस्तृत विवेचन कर चुके हैं।

## शब्द-समूह

रासो की भाषा में अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस शब्द-समूह को हम पांच भागों में विभाजित करके उसका अध्ययन करते हैं:—

१. तत्सम २. अर्द्धतत्सम ३. तद्भव ४. देश्य ५. विदेशी।

१. तत्सम—कवि, मंगल राग, तुरंग, पिशाच, कन्दरा, गज, कटक, पावक, सुत, पुरुष, अश्व, अमृत, दुष्ट, हंस, चित्त, नीर, रवि, नृपति, घृत, कुच, गंभीर, आचार, विधि, दीर्घ, लज्जा, मंत्र, वित्त, चक्रवाक, तरु, कामिनी आदि।

२. अर्द्धतत्सम—रयनि, राषस, रत्ति, दीरघ, छीन, पत्त, ग्रीषम सबद, सेज, गवन,ससिहर, पीय, मुष, सिषंड, नषत, अग्ग, अलप, सद्द, कसतूरी, मनमथ्थ, न्रपति, अपच्छर आदि।

३. **तद्भव**—खण (अप०) > खिण, सुलह (अप०) > सोहरो, मसाण (अप०) > मुसाण, कुप्पास (प्रा०) > कुपास, वेल्लि (प्रा०) > बेल, सुन्देर > सुन्दर, बहुत्त (प्रा०) > बहुत, दुल्लभो (प्रा०) > दुल्लभ, आचारिय (प्रा०) > आचारज, जुण्हा (प्रा०) > जोण्ह, एत्तक (प्रा०) एतउ, किलेस (पा०) > कलेस, सत्त (प्रा०) > सात, आदि।

४. **देश्य**—त्रंब, बागुर, भाठी, डंग, ब्योंत, बघेरा, भगर, टावर, ढोली, नाणां, मंडक, आटी, मगरो, लुगाइ, हेलो आदि।

५. **विदेशी**—फारसी—सतुर, फुरमान, असवार, कबूतर, सहनाइ, खूनी, आदि।

अरबी—अमीर, हसम (नौकर), खब्बर, अकल, फौज साहिब, मुजरा आदि।

तुर्की—हरावल, तुरक्क, तुग्क, एलची-तुपक, सौगात, तोप, चिक (> चिग्ग) आदि।

पंजाबी—रहंदी, हनंदे, सुहंदी, उपन्ना, गल्हियां, आदि।

३—आलोचनात्मक प्रश्न

१. यह प्रमाणित कीजिए कि चंद कृत पृथ्वीराज-रासो जाली ग्रन्थ नहीं है।

२. डॉ. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने जिन युक्तियों के आधार पर चंद कृत रासो को जाली ग्रंथ सिद्ध किया है, उसके सत्यासत्य पर निर्णय कीजिये।

३. अनंद विक्रम संवत् की कल्पना क्यों हुई? इसके पक्ष तथा विपक्ष में दी गई युक्तियों पर आलोचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालिए।

४. विभिन्न मतों का क्रमबद्ध उल्लेख करते हुए पृथ्वीराज-रासो की प्रमाणिकता पर अपना मंतव्य प्रकट कीजिए।

५. पृथ्वीराज-रासो के काव्य-सौन्दर्य पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

६. पृथ्वीराज-रासो महाकाव्य की दृष्टि से एक सफल रचना कही जा सकती है—इस मत पर विवेचनात्मक दृष्टि डालिए।

७. 'रासो की भाषा' शीर्षक एक निबन्ध लिखिए।

८. पृथ्वीराज-रासो के रचनाकाल तथा उसके मूल और क्षेपक अंशों पर विद्वानों के विभिन्न मतों का उल्लेख कीजिए तथा उसपर अपनी स्वतंत्र सम्मति भी लिखिए।

९. पद्मावती-समय की आलोचना काव्यगत विविध विशेषताओं के आधार पर कीजिये तथा वीरगाथा-काल के साहित्य में उसका स्थान निर्धारित कीजिये।

१०. 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति लिखते हुए पृथ्वीराज-रासो का साहित्यिक मूल्यांकन कीजिये।

११. वीरकाव्य के तत्वों का उल्लेख कीजिये और महाकवि चंद बरदाई की कविता की विशेषतायें उदाहरण सहित दीजिये।

१२. रासो में दिए हुए संवतों का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बिलकुल मेल न खाने के कारण अनेक विद्वान उसे पृथ्वीराज के किसी समकालीन कवि की रचना होने में संदेह की दृष्टि से देखते हैं।—आलोचनात्मक दृष्टि से इस कथन की परीक्षा कीजिए।

१३. 'पद्मावती समय' के काव्य सौन्दर्य की परीक्षा करते हुए प्रतिपादित कीजिये कि इसमें श्रृंगार तथा वीर दोनों रसों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

| दिनांक<br>Due Date | उधारकर्ता की संख्या<br>Borrower's No. | दिनांक<br>Due Date | उधारकर्ता की संख्या<br>Borrower's No. |
|---|---|---|---|
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |